FOREWORD.

This book provides a course of Elementary Physiology and Hygiene based on the syllabus prescribed by the Education Department for the use of pupil-teachers in Normal Schools of the United Provinces. It is intended to give Vernacular School-teachers such knowledge and information about the structure of the human body and the fundamental principles of hygiene as will enable them to watch over the health of their pupils and when necessary to render first aid.

The book has been divided into two parts, the first part dealing with Physiology, and the second part with Hygiene.

The various topics have been treated in a simple and connected form and in such a way as to be easily intelligible to any one who has no previous knowledge of elementary science. Even such topics as respiration, vision, and hearing have been treated in a manner which does not pre-suppose ny acquaintance with the principles of chemistry, ght, and sound.

A valuable feature of the book is the number and kind of illustrations. The author has supplied a sketch wherever this would help to elucidate the text, and, by avoiding ornamentation and unnecessary details, has endeavoured to make the sketches illustrate precisely the points intended and no others.

TRAINING COLLEGE,
ALLAHABAD :
20th February 1918.

A. H. MACKENZIE.

भूमिका

इस पुस्तक में मानुषी अंग तथा स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जो आवश्यकीय बातें प्रत्येक अध्यापक को साधारणतः तथा नार्मल स्कूल के विद्यार्थियों को विशेष कर जाननी चाहिएं अति सुगम रीति से समझाई गई हैं। वैद्यक के कठिन नामों का जहाँ तक हो सका है इस में प्रयोग नहीं किया गया है जिस से साधारण अध्यापक को इस विषय के समझने में कठिनाई न हो। यथावसर आकृतियाँ तथा चित्र देकर इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि जो बात भाषा से भली भाँति समझ में न आये वह इन के द्वारा स्पष्ट हो जाये।

पहिले भाग में मनुष्य के शरीर का वर्णन है जिस में पेशियाँ, रुधिर-सञ्चार, साँस लेने तथा भोजन पचाने वाले अङ्ग, मस्तिष्क तथा आँख और कान की बनावट सम्मिलित हैं। दूसरे भाग में मनुष्य के स्वास्थ्य का वर्णन है। इस में पाठशाला में प्रकाश तथा वायु का प्रबन्ध, आँख तथा कान की रक्षा, मानसिक थकावट, संक्रामक रोग तथा दैविक घटनायें और वायु, जल तथा भोजन का वर्णन किया गया है।

मैं सहर्ष इस बात को प्रकट करता हूँ कि इस पुस्तक के रचने में मेरे माननीय गुरु श्रीमान् मैकेन्ज़ी साहब प्रिन्सिपल ट्रेनिङ्ग कालेज इलाहाबाद ने उत्साह ही नहीं दिलाया वरन् उन की सम्मति के अनुसार सम्पूर्ण पुस्तक रची गई है। उक्त महोदय ने इस पुस्तक की भूमिका स्वयं अपनी लेखनी से लिख कर जो इस की प्रतिष्ठा बढ़ाई है उस का मैं कोटिशः धन्यवाद देता हूँ, साथ ही मैं अपने मित्र बाबू लालमोहन चटर्जी का कृतज्ञ हूँ जिन्हों ने इस पुस्तक के चित्रों के बनाने में अपना बहुमूल्य समय प्रदान किया है, तथा अपने हितैषी मित्र पंडित चन्द्रमौलि शुकुल एम० ए०. एल० टी और बाबू गोपीलाल जी माथुर, हेडमास्टर, नार्मल स्कूल, इलाहाबाद, को धन्यवाद देता हूँ जिन्हों ने इस के मुद्रित कराने में सहायता दी है।

के० सी० भट्टाचार्य्य

सूचीपत्र

पहिला भाग

दूसरा भाग

मानुषी अङ्ग

पहिला अध्याय

मानुषी ढाँचा

ध्यानपूर्वक देखने से विदित होता है कि शरीर के अधिकतर भाग में हड्डियाँ हैं। यह हड्डियाँ दो प्रकार की होती हैं, कुछ तो केवल खाल से ढकी हुई हैं जैसे **टखने** की हड्डियाँ और कुछ खाल से दूर मांस की गहराई में छिपी हुई हैं जैसे **जाँघ** की हड्डियाँ।

हमारे शरीर में छोटी बड़ी सब हड्डियां मिला कर २०० से कुछ अधिक हैं, परन्तु यह सब न तो आकार में ही सदृश हैं और न परिमाण में ही तुल्य हैं, वरन कुछ चपटी हैं जैसे **खोपड़ी**

---

१२ (12) बड़ी आँत—१३ (13) पित्त की थैली।
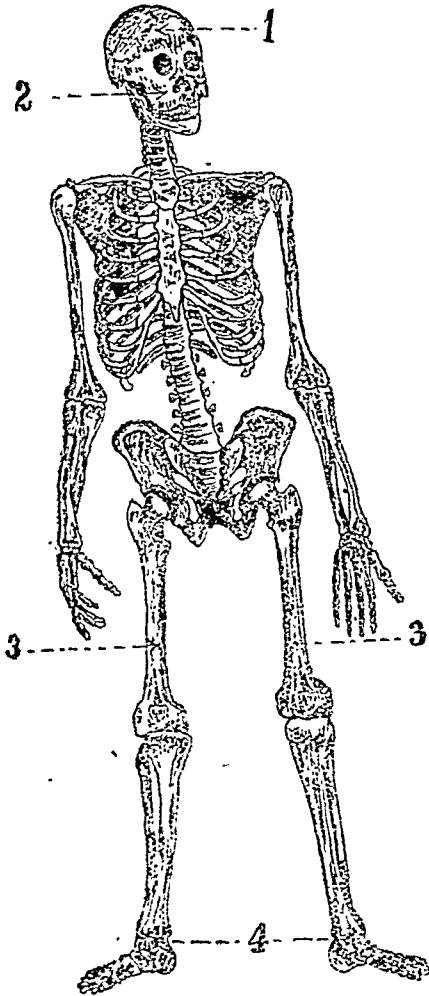
आकृति १—मानुषी ढाँचा

१ (1) खोपड़ी की हड्डियाँ—२ (2) चिहरे की हड्डियां ३ (3) जांघों की हड्डियां—४ (4) टखने की हड्डियां।

की हड्डियाँ, और कुछ लम्बी हैं जैसे जाँघों की, और कुछ छोटी छोटी हैं जैसे टखनों की ।

अपने अपने स्थान पर हड्डियाँ शरीर के भिन्न भिन्न भागों में ऐसे बन्धनों से बँधी हुई हैं जो रबड़ की भाँति घट बढ़ सकते हैं । सब हड्डियों के परस्पर जुड़ जाने से सम्पूर्ण ढाँचा बन जाता है और यही हमारे शरीर के मांस को संभाले रहता है इसी को **मानुषी ढाँचा** कहते हैं । यह चूंकि खाल तथा मांस से ढका हुआ है इसलिये दिखाई नहीं देता (आकृति १) ।

यदि आकृति १ को ध्यान से देखें तो विदित होगा कि यह मानुषी ढाँचा तीन भागों में विभाजित है अर्थात् सिर, धड़, और हाथ-पाँव ।

सिर के दो भाग हैं :—**खोपड़ी** और **चिहरा** । खोपड़ी एक गोल सन्दूक़ की भाँति है और ८ चपटी हड्डियों से मिल कर बनी है, जो एक दूसरे से भली भाँति जुड़ी हुई हैं । इन्हीं हड्डियों के सन्दूक़ में हमारा मस्तिष्क सुरक्षित है (आकृति २) ।

खोपड़ी में अधिक हड्डियों के होने का अभिप्राय यह है कि वह अत्यन्त पुष्ट तथा चोट इत्यादि से सुरक्षित रहे । अब यह बात सोचने योग्य है कि मस्तिष्क ऐसे सुरक्षित स्थान में क्यों रक्खा गया है ? बात यह है कि यह हमारे शरीर का अत्यन्त कोमल और आवश्यकीय भाग है । इस में चोट लग जाने से मनुष्य की मृत्यु का भय है ।

सिर के सामने का भाग जो खोपड़ा के ठीक नीचे स्थित है चिहरा कहलाता है। चिहरा १४ छोटी छोटी हड्डियों से
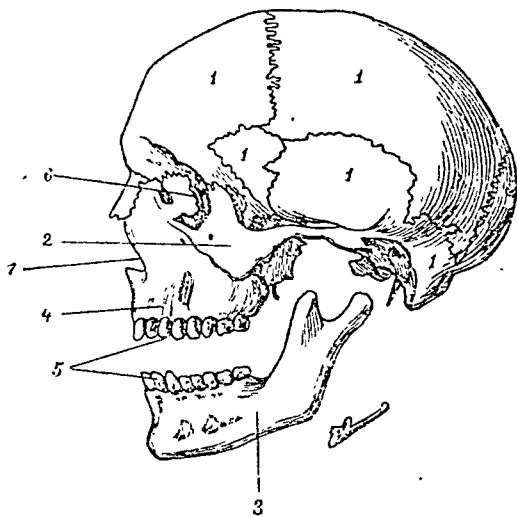
आकृति २—खोपड़ी तथा चिहरा

१ (1) खोपड़ी की हड्डियाँ—२ (2) चिहरे की हड्डियाँ—
३ (3) नीचे का जबड़ा—४ (4) ऊपर का जबड़ा—५ (5) दांत—६
(6) आंख का गढ़ा—७ (7) नाक का गढ़ा।

मिल कर बना है। यदि अपने चिहरे की हड्डियों को टटोल कर देखें तो उनको प्रायः ठीक खाल के नीचे पायेंगे। उनमें से १३ तो ऊपर की ओर हैं और १ नीचे की ओर। ऊपर की १३

हड्डियाँ परस्पर भली भाँति जुड़ी हुई हैं, परन्तु जो नीचे की ओर है वह ऊपर की हड्डियों से इस प्रकार जुड़ी हुई है कि अत्यंत सुगमता से हिल जुल सकती है और इसी को नीचे का जबड़ा कहते हैं। ऊपर का जबड़ा दो हड्डियों से मिल कर बना है। एक तो चिहरे की दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर स्थित है। दोनों जबड़ों में सोलह सोलह दाँत हैं जिन से हम खाने के पदार्थों को चबाते, कुचलते, तथा काटते हैं। यदि नीचे का जबड़ा इस प्रकार न हिलता जुलता तो खाना और बोलना असम्भव हो जाता।

आकृति २ के देखने से विदित होगा कि हमारे चिहरे और खोपड़ी की हड्डियाँ ऐसे क्रम से जुड़ी हुई हैं कि नाक की जड़ की हड्डी के दोनों ओर दो गहरे और खोखले गोल गोल स्थान बन गये हैं और नाक इन दोनों गढ़ों को अलग करती है। इन्हीं में दोनों आँखें रक्खी हैं। इन गढ़ों से आँखों की बड़ी रक्षा होती है। इस से यह सिद्ध होता है कि हड्डियाँ किस प्रकार शरीर के कोमल अंगों की रक्षा करती हैं। आगे चल कर हम यह बतायेंगे कि हड्डियों से बड़े बड़े अंगों की भी रक्षा होती है। आकृति २ के देखने से यह बात भी प्रकट होगी कि नाक की हड्डी के नीचे और आँखों के दोनों गढ़ों के बीच में एक छेद है। इस से यह बात स्पष्ट ज्ञात होगी कि चिहरे की हड्डियों से आँख, नाक तथा मुंह की वैसे ही रक्षा होती है जैसे कि खोपड़ी से मस्तिष्क की होती है।

सिर के नीचे धड़ होता है (आकृति ३) जो गर्दन से लेकर कमर तक है। इस के ऊपर के भाग में दोनों ओर बाँहें और नीचे के भाग में टाँगें जुड़ी हुई हैं।

धड़, रीढ़, पसलियों तथा छाती की हड्डी और कूल्हों की दो हड्डियों से मिल कर बना है।

रीढ़ गर्दन से लेकर कमर तक स्थित है, जो एक प्रकार के खम्भ का काम देती है और इसीके आधार पर सिर और धड़ स्थित हैं। यह कोई एक लम्बी हड्डी नहीं है वरन ऐसी छोटी छोटी हड्डियों से मिल कर बनी है जैसी कि हम ने आकृति ४ में दिखलाई हैं और जिन को **पीठ की गुट्टियाँ** कहते हैं; यह छोटी छोटी हड्डियाँ गिनती में २६ हैं। रीढ़ के ऊपरी भाग में जो गर्दन में स्थित है ७ हड्डियाँ हैं और बीच के भाग में १२ तथा निचले भाग में ७ हैं। सब से निचली दो हड्डियाँ सब से बड़ी पुष्ट और मोटी हैं। रीढ़ की सब हड्डियाँ एक दूसरे के ऊपर क्रमशः रक्खी हुई हैं और प्रत्येक दो हड्डियों के बीच में एक प्रकार की नर्म हड्डी गद्दी के सदृश है। यह हड्डियाँ चिहरे तथा खोपड़ी की हड्डी की भाँति अत्यन्त दृढ़ता के साथ जुड़ी हुई नहीं हैं वरन वह रबड़ के सदृश पुष्ट बन्धनों से बँधी हैं और चूंकि उनका क्रम उपर्युक्त ढंग पर हुआ है इसलिये हम अपने शरीर को सुगमता से चारों ओर घुमा और झुका सकते हैं। कदाचित् रीढ़ में एक ही लम्बी हड्डी होती अथवा यह छोटी छोटी हड्डियाँ चिहरे तथा खोपड़ी की
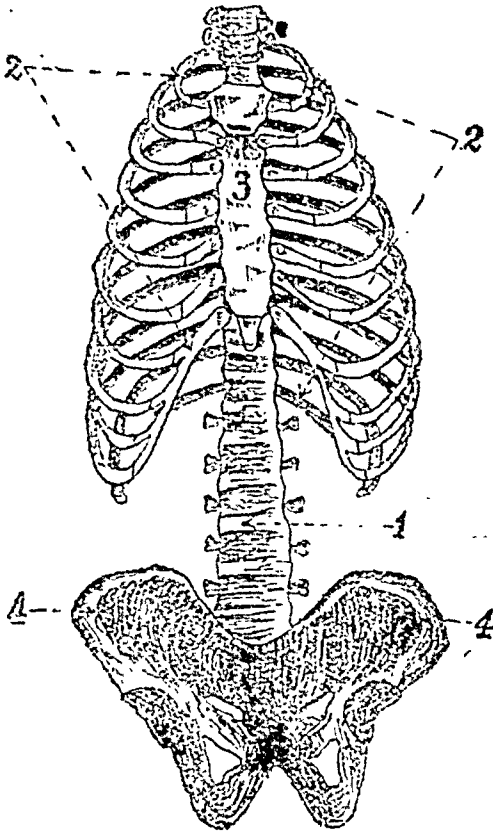
आकृति ३—धड़

१ (1) रीढ़—२ (2) पसलियां—३ (3) छाती की हड्डी—४ (4) कूल्हों की हड्डियां।

हड्डियों के सदृश बहुत दृढ़ता के साथ जुड़ी हुई होतीं तो हम अपने शरीर को न किसी ओर फेर सकते और न नीचे को झुका सकते।

आकृति ५ में जो रीढ़ की हड्डी का चित्र दिया है उसको एक ओर से देखने से जान पड़ता है कि यह गर्दन के पास आगे

आकृति ४—पीठ की गुट्टी

को मुड़ी हुई है और पीठ में पीछे को तथा कमर पर सामने को झुकी हुई है। इसी आकृति के देखने से यह भी ज्ञात होगा कि रीढ़ के नीचे के भाग की हड्डियाँ ऊपर की हड्डियों की अपेक्षा बहुत मोटी और पुष्ट हैं और जड़ पर पहुँच कर और भी मोटी तथा पुष्ट हो गई हैं इसी से यह शरीर के सम्पूर्ण भार को संभालने के योग्य हैं।

धड़ के अगले भाग के देखने से ज्ञात होगा (आकृति ३) कि इसमें बहुत सी टेढ़ी, लम्बी और चपटी हड्डियाँ दोनों ओर हैं, इन को **पसलियाँ** कहते हैं। इनमें से कुछ लम्बी और कुछ छोटी हैं। पसलियाँ गिनती में २४ हैं जिनमें से १२ दाहिनी ओर और १२ बाईं ओर हैं। यह सब पीछे की ओर रीढ़ के साथ और ` की ओर छोटी तथा चपटी **छाती की हड्डी** के साथ ..। हुई हैं। छाती की हड्डी और रीढ़ की हड्डियों तथा पस-

लियां के मिलने से एक सन्दूक सा बन जाता है जिसको छाती कहते हैं। छाती के भीतर बाईं ओर दिल स्थित है जो सदा धड़कता रहता है। छाती के भीतर दिल के अतिरिक्त और भी अंग हैं जिनका वर्णन हम आगे चल कर करेंगे।

बाँहें धड़ के ऊपरी भाग से दोनों ओर जुड़ी हुई हैं। इनमें से प्रत्येक के तीन भाग हैं **ऊपरी बाजू, निचला बाजू और हाथ**। प्रत्येक बांह में ३२ हड्डियां हैं (आकृति ६)।

आकृति ६ को देखने से ज्ञात होगा कि **बाजू का ऊपरी भाग** जो एक ही लम्बी हड्डी से बना है **कंधे से कुहनी** तक है। ऊपर का सिरा गोल है जो कंधे पर की बड़ी चपटी त्रिभुजाकार हड्डी के प्याले के सदृश घर में जाकर ठीक ठीक बैठ गया है और इस प्याले में मूसली के सदृश यह सिरा चारों ओर सुगमता से घूम सकता है। इस बड़ी त्रिभुजाकार हड्डी

आकृति —९ रीढ़

१ (1) ऊपर के भाग में ७ हड्डियां—२ (2) बीच के भाग में १२ हड्डियां—३ (3) निचले भाग में ७ हड्डियां।

(11) छोटी आंत—१२ (12) बड़ी आंत—१३ (13) पित्त की थैली।

को कंधे की हड्डी कहते हैं। इस को अपनी छाती के पीछे ऊपर की ओर हम स्वयं टटोल कर देख सकते हैं। कंधे की हड्डी अत्यन्त पुष्ट, लम्बी और टेढ़ी हड्डी से जिस को हँसली कहते हैं अपने स्थान पर स्थित रहती है। हँसली का एक सिरा छाती की हड्डी से और दूसरा कंधे की हड्डी से जुड़ा है (आकृति ६)।

बाजू की हड्डी के नीचे का भाग कुहनी पर पहुँचकर चपटा होता जाता है और निचले बाजू की दो लम्बी हड्डियों से जाकर जुड़ जाता है इस जोड़ को कुहनी कहते हैं। इसके द्वारा हम अपने निचले बाजू को ऊपर नीचे ले जा सकते हैं, परन्तु बाजू के सदृश इसे चारों ओर नहीं घुमा सकते कारण यह है कि इन दोनों के जोड़ों में बहुत अन्तर है। इस जोड़ के कारण निचला बाजू ऊपर नीचे इस प्रकार उठता बैठता है जिस प्रकार सन्दूक का ढकना सुगमता से खुलता और मुँदता है।

निचले बाजू में दो लम्बी हड्डियाँ हैं। एक मोटी और दूसरी कुछ पतली। यह दोनों हड्डियाँ परस्पर इस प्रकार जुड़ी हुई हैं कि छोटी हड्डी बड़ी हड्डी के चारों ओर सुगमता से घूम सकती है और हम अपने हाथों को दोनों ओर बिना कठिनाई के इधर उधर मोड़ सकते हैं।

यह दोनों हड्डियाँ नीचे के सिरे पर पहुँचे से जुड़ी हुई हैं। पहुँचा ८ छोटी छोटी हड्डियों से जो दो पंक्तियों में लगी हुई हैं सम्मिलित है। प्रत्येक पंक्ति में चार चार हड्डियाँ हैं। यह
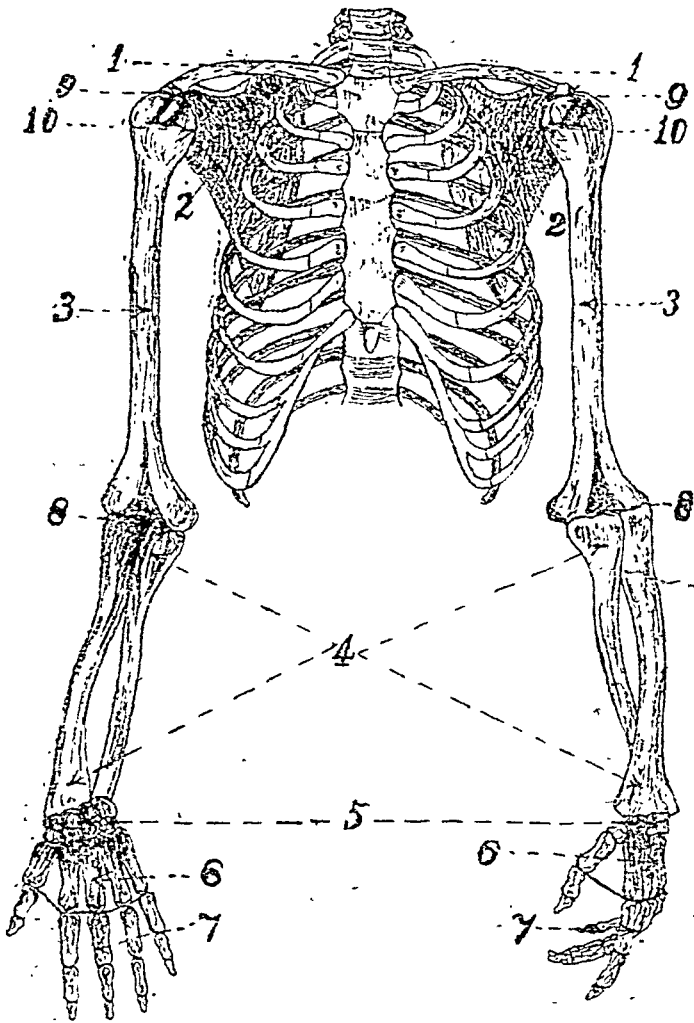
आकृति ६—बाजू और छाती

१ (1) हँसली—२ (2) कंधे की हड्डी--३ (3) ऊपरी बाज़ू—४ (4) निचला बाज़ू—५ (5) पहुँचा—६ (6) हथेली—७ (7) अगूंठा और चार अंगुलियाँ—८ (8) कुहनी का जोड़—९ (9) कन्धे का जोड़—१० (10) कन्धे की हड्डी का प्याले के सदृश घर—११ (11) बाज़ू की हड्डी का गोल सिरा।

(9) पाकाशय—१० (10) कलजा—११ (11) छोटी आंत—१२ (12) बड़ी आंत—१३ (13) पित्त की थैली।

हड्डियाँ सामने की ओर **हथेली** की हड्डियों से मिल जाती हैं। हथेली में ५ लम्बी हड्डियां हैं जिस में अंगूठा और ४ अँगुलियाँ सम्मिलित हैं। प्रत्येक उँगली में ३ पतली पतली हड्डियां हैं, जिनको पोर भी कहते हैं। अंगूठे में केवल २ हड्डियां हैं। सारांश यह कि हमारे हाथ में हथेली और पहुँचे की सब हड्डियाँ मिला कर छोटी बड़ी कुल २७ हैं, जो एक दूसरे से भिन्न भिन्न जोड़ों के द्वारा मिली हुई हैं। यदि हाथ की बनावट ऐसी कोमल हड्डियों से न होती अथवा इतनी हड्डियों से न होती तो हम अपने हाथों और उंगलियों को इस शीघ्रता और स्वतंत्रता से न हिला जुला सकते और न मोड़ सकते। अतएव हम भाँति भाँति की वस्तुओं को उठा भी न सकते और न भिन्न भिन्न प्रकार के स्थूल तथा सूक्ष्म काम भी कर सकते।

धड़ के नीचे के भाग से दोनों ओर टाँगें जुड़ी हुई हैं। हाथों के सदृश इन के भी तीन भाग हैं अर्थात् **जाँघें, पिंडलियाँ** और **पाँव** (आकृति ७)। प्रत्येक टाँग में ३० हड्डियां हैं।

जाँघ में एक लम्बी हड्डी है जो कमर के नीचे से लेकर घुटने तक है। जाँघों की हड्डियाँ शरीर की सब हड्डियों से बड़ी और पुष्ट हैं।

बाजू के सदृश जाँघ की हड्डी का ऊपर का सिरा भी गोल है, जो एक बड़ी चपटी हड्डी के प्याले की नाईं घर में ठीक बैठा है। इसी बड़ी चपटी हड्डी को **कूल्हे** की हड्डी कहते हैं।
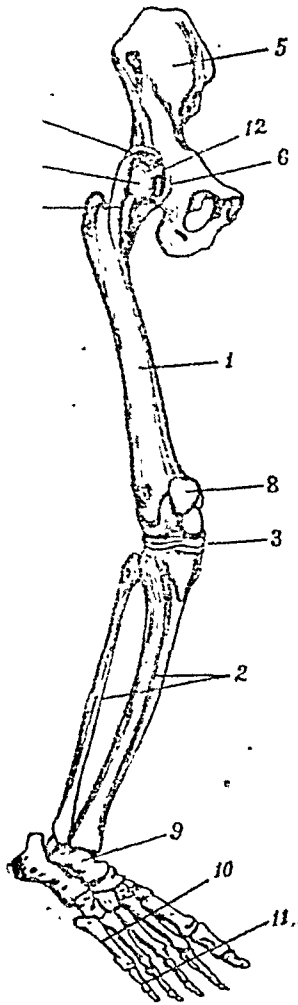
कमर के दोनों ओर टटोलने से कूल्हे की दोनों हड्डियाँ उभरी हुई ज्ञात होंगी। हम अपनी टाँगों को इसी जोड़ के द्वारा सुगमता से इधर उधर हिला जुला सकते हैं।

ध्यान देने से ज्ञात होगा कि हम अपनी टाँगों को ऐसी सुगमता से नहीं घुमा सकते जैसे कि वाजुओं को। इसका कारण यह है कि कूल्हे की हड्डी का जोड़ यद्यपि कंधे की हड्डी के जोड़ के सदृश है, परन्तु वास्तव में उससे कुछ भिन्न है। आकृति ७ के देखने से ज्ञात होगा कि वह गढ़ा जिसमें जाँघ की हड्डी का सिरा स्थित है अधिक गहरा है और जिसमें बाज़ू का सिरा है उसकी गहराई कम है। यदि दोनों कूल्हों के गढ़े भी वैसे कम गहरे होते जैसे कि कंधों के, तो जांघों को भी उसी प्रकार सुगमता से हम हिला जुला सकते जैसे कि

आकृति ७—टांग

१ (1) जांघ की हड्डी। २ (2) पिंडली की हड्डियाँ। ३ (3) घुटने का जोड़। (4) कूल्हे का जोड़। ५ (5) कूल्हे की हड्डी। ६ (6) कूल्हे की हड्डी का प्याले के सदृश घर—७ (7) जांघ की हड्डी का गोल सिरा। ८ (8) चपनी। ९ (9) टखना—१० (10) तलवे की हड्डियाँ—११ (11) पांव के अंगूठे और उँगलियों की हड्डियाँ। १२ (12) जांघ की हड्डी का बन्धन।

पाकाशय—१० (10) कलेजा—११ (11) छोटी आँत—१२ (12) बड़ी आँत—१३ (13) पित्त की थैली।

की हड्डियों से जुड़ी हैं। पाँव के तलवे में भी हथेली के सदृश ५ छोटी हड्डियाँ हैं और पाँवों की उँगलियों में १४ हड्डियाँ होती हैं। प्रत्येक उँगली में ३ और अँगूठे में २ हड्डियाँ होती हैं (आकृति ७)।

आकृति ६ व ७ के देखने से ज्ञात होगा कि पाँव की हड्डियाँ हाथों की हड्डियों की अपेक्षा छोटी मोटी और अधिक पुष्ट हैं। चूंकि हाथ और पाँव के काम भिन्न भिन्न हैं इसलिये दोनों की बनावट भी एक ही सदृश नहीं है। पाँवों की हड्डियों से केवल शरीर के भार को सँभालने का अभिप्राय है। इनको हाथों की भाँति शीघ्रता और सुगमता से हिलाने जुलाने का उद्देश्य नहीं है अतएव वह वैसी पतली और लम्बी नहीं हैं। कदाचित् वह हाथों की हड्डियों के सदृश पतली और कोमल होतीं तो शरीर के भार को सँभाल न सकतीं।

[illegible] दिल—९ (9) पाकाशय—१० (10) कलेजा—११ (11) छोटी आँत—१२ (12) बड़ी आँत—१३ (13) पित्त की थैली।

दूसरा अध्याय

पेशियाँ

पहिले अध्याय में हम देख चुके हैं कि मानुषी ढाँचा बहुत सी हड्डियों से मिल कर बना है और यह भी जान चुके हैं कि सब हड्डियों की शकल व क़द भी एकसाँ नहीं है और वह ऐसे बन्धनों से बँधी हुई हैं जो रबड़ के सदृश घट बढ़ सकते हैं।

अब इस अध्याय में शरीर के मांस वाले भाग का वर्णन है जिस में सब हड्डियाँ छिपी हुई हैं। शरीर के भिन्न भिन्न भागों के मांस को टटोलने से ज्ञात होगा कि प्रत्येक भाग अलग अलग मांस के लुथड़ों से आच्छादित है जिनमें कुछ तो मोटे और बड़े हैं और कुछ महीन और छोटे हैं (आकृति ८), मांस के इन भिन्न भिन्न लुथड़ों को **पेशियाँ** कहते हैं।

यह लुथड़े मनुष्य के शरीर में लगभग ५०० हैं। आकृति ८ में मनुष्य के शरीर का वह आकार दिखाया गया है जिसमें से खाल अलग कर ली गई हो जिस से मांस वाले भागों की भिन्न भिन्न पेशियाँ दिखाई जा सकें।

पेशियों में मुख्य बात यह है कि वह सिकुड़ कर मोटी हो जाती हैं और फिर अपनी पहिली दशा पर आ जाती हैं। इस-

आकृति ८
पेशियाँ
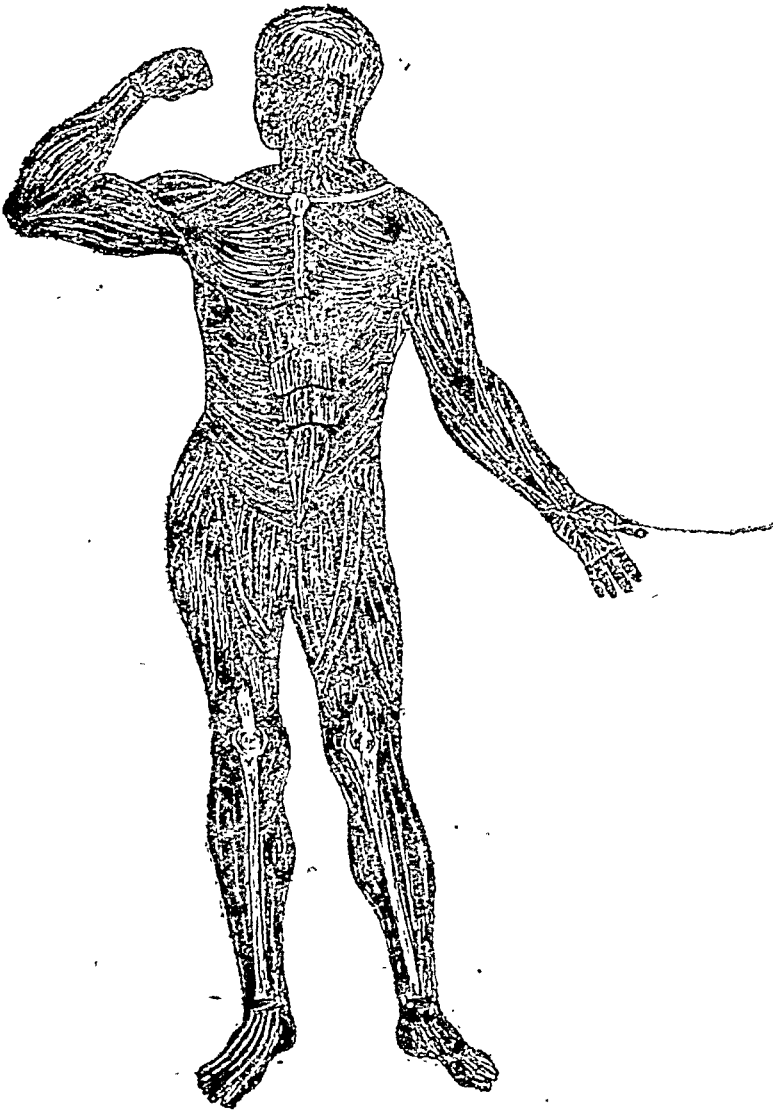
—९ (9) पाकाशय—१० (10) कलेजा—११
—१२ (12) बड़ी आँत—१३ (13) पित्त की थैली।

लिये पेशियाँ लगभग रबड़ की भाँति होती हैं जो दबाने से दब जाती हैं और इस के पश्चात् फिर अपने ठीक स्थान पर आ जाती हैं। इस के अतिरिक्त पेशियाँ साधारण रीति से दोनों सिरों गावदुम और मध्य में मोटी होती हैं। इन के सिरे एक प्रकार लचने वाले चमकीले और श्वेत रंग के पुष्ट बन्धनों से जिन्हें **नसें** कहते हैं हड्डियों से बन्धे होते हैं (आकृति ६)।
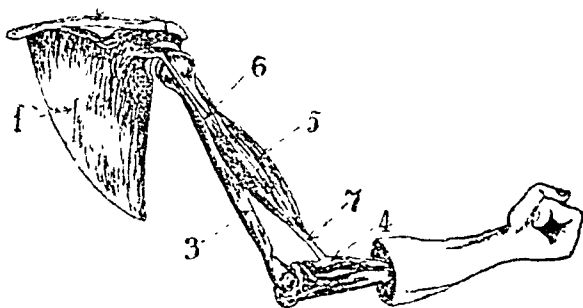
आकृति ६—बाज़ू की पेशी
१ (1) कंधे की हड्डी। २ (2) हँसली। ३ (3) बाज़ू की हड्डी। ४ (4) कलाई की छोटी हड्डी। ५ (5) बाज़ू की पेशी। ६ (6)—७ (7) नसें।

आकृति ६ में बाज़ू की पेशी का चित्र दिखाया गया है। इसका ऊपरी सिरा कन्धे की हड्डी से दो नसों के द्वारा बँधा हुआ है और नीचे का सिरा कलाई की छोटी हड्डी से केवल एक ही नस के द्वारा बँधा हुआ है।

जैसे जैसे बाज़ू की यह पेशी सिकुड़ती जाती है वैसे वैसे उस के दोनों सिरे समीप होते जाते हैं यहां तक कि कलाई का दूसरा सिरा कन्धे से आकर मिल जाता है। इसी प्रकार सब पेशियाँ सिकुड़ती हैं और उनके सिकुड़ने से शरीर के भिन्न भिन्न भाग अपने जोड़ों पर हिलते जुलते हैं।

पेशियों का मुख्य काम शरीर में गति उत्पन्न करना है और हड्डियाँ विना उन की सहायता के अपने जोड़ों पर नहीं हिल जुल सकतीं। हमारा सारा चलना फिरना, ठहरना और उठना, बैठना, दौड़ना, सीधे खड़ा होना, भारी वस्तुओं का उठाना या फेंकना, हँसना और बोलना इत्यादि सब काम इन पेशियों ही के सहारे होते हैं। अगर यह न होतीं तो शरीर का कोई भाग न हिलता जुलता।

सब से बड़ी और दिखाई देने वाली पेशियाँ जाँघों में और बाजुओं के सामने और पीछे स्थित हैं। पेशियों का सिकुड़ कर हिलना जुलना मनुष्य की इच्छा तथा विचार पर निर्भर है और बिना इच्छा के वह न तो टाँगों से चल सकता है तथा न हाथों से कुछ उठा सकता है। अतः विदित हुआ कि पेशियाँ जिन के द्वारा टाँगों और बाँहों में गति उत्पन्न होती है वह विचार के अधीन हैं और बिना विचार के न कोई पेशी सिकुड़ती है तथा न कोई गति ही उत्पन्न होती है। शरीर के भिन्न भिन्न भाग इस प्रकार की पेशियों से लगभग सर्वथा ढके हुए हैं। आकृति ९ में भी इस प्रकार की पेशियाँ दिखाई गई हैं।

[illegible] ८ [illegible] —९ (9) पाकाशय—१० (10) कलेजा—११ (11) छोटी आँत—१२ (12) बड़ी आँत—१३ (13) पित्त की थैली।

पेशियाँ।

एक प्रकार की और भी पेशियाँ हैं जो भली भाँति हमारे अधिकार में नहीं हैं जैसे वह पेशियाँ जो साँस लेते समय हमारी छाती को सिकोड़ती और फैलाती हैं और रात दिन अपने कार्य से नहीं रुकतीं। यहाँ तक कि सोते समय भी उनका कार्य बन्द नहीं होता और न उनके रुकने पर हमारा कोई उपाय है। यदि हम उनको रोकना चाहें तो पहिले हम को अपनी साँस रोकनी पड़ेगी। परन्तु इस से हमारा जी व्याकुल होने लगेगा।

अतः प्रकट है कि वह पेशियाँ जिनके द्वारा हम साँस लेते हैं कदापि हमारे अधीन नहीं हैं। इस प्रकार की पेशियाँ कि जिन पर हमारा कोई वस नहीं और भी हैं और वह अधिकतर शरीर के भीतरी अङ्गों अर्थात् पेट और हृदय में स्थित हैं।

तीसरा अध्याय

रुधिर-सञ्चार

दूसरे अध्याय में वर्णन हो चुका है कि पेशियों के सिकुड़ने से शरीर के भिन्न भिन्न भाग हिलते जुलते हैं और हमारे छोटे बड़े सब काम इन्हीं पर निर्भर हैं। परन्तु यदि हम थोड़े दिन तक खाना पीना छोड़ दें तो पेशियों से बहुत काम नहीं ले सकते, इस से वह निर्बल हो जाती हैं, क्योंकि उन का कुछ अंश सदा क्षीण होता रहता है और उन से निकम्मी तथा निकृष्ट वस्तुयें उत्पन्न होने लगती हैं। हमारे नाममात्र हिलने से भी हमारे शरीर का कुछ न कुछ भाग अवश्य क्षय हो जाता है, चाहे पलक मारना, मुँह चलाना अथवा उँगली उठाना ही क्यों न हो।

इसी न्यूनता को पूर्ण करने के लिए हमें प्रति दिन भोजन की आवश्यकता होती है। अब यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस भोजन से यह न्यूनता किस प्रकार पूर्ण होती है। भोजन रुधिर [illegible]रा इस न्यूनता को पूर्ण करता है। रुधिर भोजन से ही मांस उत्पन्न [illegible] वाला पदार्थ ग्रहण करके शरीर के सब भागों में बाँट [illegible]ह किस प्रकार ग्रहण करता है हम आगे चल कर बतायेंगे।

[illegible]) दिल—९ (9) पाकाशय—१० (10) कलेजा—११ [illegible]ंत—१२ (12) बड़ी आंत—१३ (13) पित्त की थैली।

रुधिर सञ्चार।

रुधिर शरीर के पालन पोषण करने तथा उस को प्रफुल्लित रखने के अतिरिक्त उस के निकम्मे तथा निकृष्ट भाग को भी निकालता रहता है। कदाचित् वह शीघ्र दूर न हो जाय तो शरीर में भाँति भाँति के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

रुधिर शरीर का पालन पोषण करता है और उस के निकम्मे भाग को निकाल देता है इस पर वादानुवाद करने से पहिले हम स्वयं रुधिर का वर्णन करेंगे, क्योंकि इसके सम्बन्ध की बातों का जानना अति आवश्यक जान पड़ता है।

यह तो सब जानते हैं कि रुधिर द्रव तथा गहरे लाल रंग का होता है और जल की अपेक्षा कुछ गाढ़ा होता है, परन्तु जब इस में मैले तथा निकम्मे पदार्थ मिल जाते हैं तो इस का रंग गहरा बैंगनी हो जाता है। रुधिर बाल और नहों के अतिरिक्त शरीर के प्रत्येक भाग में पाया जाता है। यही कारण है कि हमारे शरीर के किसी भाग में चाहे कितनी ही पतली सुई चुभाई जाय कुछ न कुछ रुधिर निकल आता है।

परन्तु इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि रुधिर शरीर में इस प्रकार रहता है जिस प्रकार मशक में पानी, वरन् यह सम्पूर्ण शरीर में फिरता रहता है। रुधिर अगणित छोटी छोटी नालियों के द्वारा शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में घूमा करता है। शरीर के भिन्न भिन्न भागों में रुधिर दिल से पहुँचता है जो छाती की बाईं ओर स्थित है और सदैव धड़कता रहता है (आकृति ११)।

दिल छाती की हड्डी के नीचे बाईं ओर स्थित है यह

परिमाण में मुट्ठी के बराबर है । दिल के ऊपर का भाग दाहिनी ओर पीछे को झुका हुआ है और नीचे वाले भाग की अपेक्षा जो कुछ नोकीला है तथा बाईं ओर को झुका हुआ है अधिक चौड़ा है (आकृति १०), और बहुत पुष्ट तथा मोटी पेशियों से बना हुआ है । इन्हीं पेशियों के बार बार सिकुड़ने और फैलने के कारण दिल धड़कता है और यह सिकुड़ना तथा फैलना हमारी इच्छा के बाहर है, जिस प्रकार कि साँस लेने की पेशियों का सिकुड़ना तथा फैलना हमारे अधिकार में नहीं है । अतएव दिल न तो हमारी इच्छा और बस से धड़कता है और न हमारे रोकने से रुकता है ।

दिल के भीतर सदा रुधिर भरा रहता है । भीतरी भाग पुष्ट पेशियों से चार ख़ानों में विभाजित है, जिनमें से दो दाहिनी ओर और दो बाईं ओर स्थित हैं (आकृति ११) ।

ऊपर के प्रत्येक ख़ाने में एक एक छेद है इन छेदों के द्वारा ऊपर के ख़ाने नीचे के ख़ानों से मिले हुए हैं । इन छेदों पर एक एक परदा है जो साधारण किवाड़ों की भाँति केवल एक ही ओर को खुल सकता है । यह परदे इस प्रकार खुलते हैं कि ऊपर के ख़ानों का रुधिर नीचे के खानों में सुगमता से आ सकता है, परन्तु जब नीचे के ख़ानों का रुधिर ऊपर को जाता है तो तत्काल ही परदे बन्द हो जाते हैं ।

दिल के दोनों ऊपर के ख़ानों में कोई ऐसा छेद नहीं है

---

(9) दिल—९ (9) पाकाशय—१० (10) कलेजा—११ (11) आँत—१२ (12) बड़ी आँत—१३ (13) पित्त की थैली ।

जो उन दोनों को मिला दे। इसी प्रकार नीचे के दोनों ख़ानों में भी परस्पर कोई लगाव नहीं।

दिल के बाईं ओर का ख़ाना सदैव चटकीले लाल रंग के रुधिर से भरा रहता है और दाहिनी ओर का ख़ाना गहि वैंगनी रंग के रुधिर से भरा रहता है (आकृति १०,११)। इस दशा को हम ने चित्र में इस प्रकार दिखाया है कि बाईं ओर का ख़ाना जिस में लाल रुधिर रहता है उस में लाल रङ्ग दिया है और जिस में वैंगनी रुधिर रहता है उस में वैंगनी रङ्ग दिया है।

आकृति १० को देखने से यह भी ज्ञात होगा कि दिल के ख़ानों में छोटी बड़ी ८ नालियाँ हैं। इन्हीं नालियों के द्वारा दिल सम्पूर्ण शरीर को रुधिर पहुँचाता रहता है। लाल नालियों में से शुद्ध रुधिर बहता है और वैंगनी नालियों में से अशुद्ध रुधिर बहा करता है।

अब हम यह बतायेंगे कि दिल किस प्रकार रुधिर सम्पूर्ण शरीर में पहुँचाता है।

रुधिर शरीर के मैल तथा निकम्मे पदार्थों को लेकर अशुद्ध तथा मैला हो जाता है, फिर दो बड़ी नालियों के द्वारा दिल के ऊपर के दाहिने ख़ाने में जाता है। यह नालियां उँगली के बराबर मोटी हैं। इन में से एक शरीर के ऊपर के भाग से और दूसरी नीचे के भाग से मैला रुधिर एकत्रित करके दिल में पहुँचाती है। इन दोनों नालियों को आकृति १० में
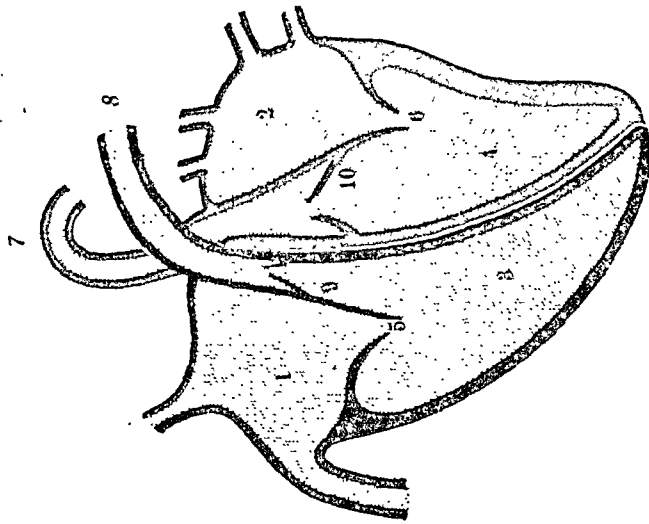
फेफड़े—८ (8) दिल—९ (9) पाकाशय—१० (10) कलेजा—११ (11) छोटी आँत—१२ (12) बड़ी आँत—१३ (13) पित्त की थैली।

आकृति ११—दिल के भीतरी भाग।

१ (1) दाहिनी ओर का ऊपर का ख़ाना—२ (2) बाईं ओर का ऊपर का ख़ाना—३ (3) दाहिनी ओर का नीचे का ख़ाना—४ (4) बाईं ओर का नीचे का ख़ाना—५ (5) दाहिनी ओर का परदा—६ (6) बाईं ओर का परदा—७ (7) मूलधमनी—८ (8) फेफड़ों में जाने वाली नली—९ (9) फेफड़ों में जाने वाली बड़ी नली का छेद—१० (10) मूलधमनी का छेद।

आकृति १२, धमनियाँ, शिरायें तथा बाल के सदृश पतली नालियाँ।

१ (1) धमनियाँ—२ (2) शिरायें—३ (3) बाल के सदृश पतली नालियाँ।
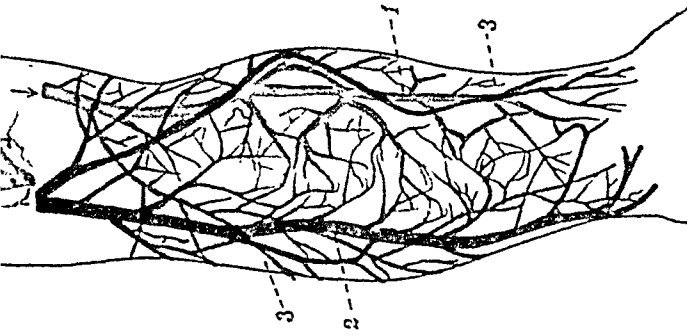
बैंगनी रङ्गा गया है जिस से यह देखते ही ज्ञात हो जाय कि इन में से होकर मैला रुधिर जाता है।

जब दिल के दाहिनी ओर का ऊपर का ख़ाना (आकृति ११) मैले रुधिर से पूर्णतया भर जाता है, तो जहाँ तक सम्भव होता फ़ैल जाता है। तत्पश्चात् सिकुड़ने लगता है और मैले रुधिर को निचोड़ता है। रुधिर निकलते समय परदा नं० ५ को दबा कर और तुरंत खोल कर नीचे के ख़ाने नं० ३ में आ जाता है।

यह ख़ाना नं० ३ भी अब रुधिर से भर जाने पर सिकुड़ने लगता है और परदा नं० ५ तत्काल ही बन्द हो जाता है और रुधिर चूंकि ऊपर के ख़ाने में लौट कर नहीं जा सकता इसलिए छेद ६ के द्वारा बड़ी नाली ८ में चला जाता है। यह नाली दिल से कुछ दूर ऊपर जाकर दो भागों में विभाजित हो जाती है जिन में से एक दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर के फेफड़े में चली जाती है (आकृति १०) यह बड़ी नाली और इस की दोनों शाखायें बैंगनी रंग से रंग दी गई हैं जिस से ज्ञात हो जाय कि मैला रुधिर इन में होकर फेफड़ों को जाता है।

फेफड़े त्रिभुजाकार थैले के सदृश होते हैं जैसा कि आकृति १० को देखने से ज्ञात होगा। मैला रुधिर फेफड़ों से होकर जाता है तो उस का मैल दूर हो जाता है और फिर लाल हो जाता है। अगले अध्याय में फेफड़ों की बनावट तथा उन के द्वारा रुधिर के शुद्ध होने की दशा वर्णन की जायगी।

फेफड़ों के भीतर होकर जाने से जब रुधिर शुद्ध हो जाता

(11) ५ आंत—१२ (12) बड़ी आंत—१३ (13) पित्त की थैली।

है तो फिर दिल की ओर लौट आता है और चार नालियों के द्वारा ऊपर के ख़ाने न०२ में जो बाई ओर स्थित है पहुँचता है। इन चार नालियों में से दो नालियाँ दाहिने और दो बायें फेफड़े की ओर से आती हैं (आकृति १०) चूंकि इन नालियों में स्वच्छ रुधिर रहता है इसलिए आकृति में इन का रंग लाल दिखाया गया है।

ऊपर का ख़ाना न०२ स्वच्छ रुधिर से भरते ही सिकुड़ने लगता है और इस के सिकुड़ने से परदा न०६ खुल जाता है और रुधिर नीचे के ख़ाने न०४ में चला जाता है।

फिर यह ख़ाना भी जब रुधिर से पूर्णतया भर जाता है तो सिकुड़ने लगता है और रुधिर को वेग से बाहर निकालने का उद्योग करता है और परदा न०६ इस समय बन्द हो जाता है और अन्त में रुधिर दिल के बाहर उस छेद से जो न०१० पर स्थित है होकर ऊपर की एक बड़ी नाली न०७ में जिस को **मूल धमनी** कहते हैं बहने लगता है। यह धमनी शरीर में रुधिर की सब से बड़ी नाली है और अंगूठे के समान मोटी है।

मूल धमनी दिल से कुछ दूर ऊपर को जाकर घूमती है। यहाँ से इस की दो बड़ी शाखायें सिर की ओर और दो हाथों की ओर जाती हैं और यही नीचे की ओर सम्पूर्ण धड़ में फैलती चली गई हैं और इसी से सैकड़ों शाखायें फूट कर धड़ के निचले भागों में फैली हुई हैं और यही कमर पर पहुँच कर दोनों टाँगों के लिये दो बड़ी बड़ी शाखाओं में विभाजित हो गई

हैं । यह सब बड़ी बड़ी शाखायें आगे और छोटी छोटी शाखाओं में विभाजित होती चली जाती हैं यहां तक कि अन्त में बाल के सदृश सूक्ष्म हो गई हैं (आकृति १०) ।

रुधिर की यह नालियाँ इतनी अधिक तथा इतनी घनी हैं [illegible] रीर के प्रत्यंक भाग में इन से एक जाल सा बन जाता है । यही कारण है कि शरीर का कोई भाग ऐसा नहीं है जिस में तनिक सी भी सुई चुभ जाय और उस से रुधिर न निकले । दिल से निकल कर रुधिर पहिले मूल धमनी फिर इस की बड़ी शाखाओं में और फिर उन की अत्यंत छोटी छोटी शाखाओं में और अंत में बाल के सदृश सूक्ष्म नालियों में बहता है । इन्हीं नालियों की पतली दीवारों के द्वारा रुधिर पेशियों और शरीर के अन्य भागों को भोजन पहुँचाता है और शरीर का मैला भाग अपने में सोख लेता है । जब रुधिर शरीर के मैले भाग को सोख करके इन नालियों से होकर जाता है तो धीरे धीरे उसका रंग ललाई से बदल कर गहरा बैंगनी हो जाता है ।

शरीर के भिन्न भिन्न भागों का निकम्मा रुधिर उन बड़ी बड़ी नालियों में से होकर जाता है जो अगणित बाल के सदृश सूक्ष्म नालियों के परस्पर मिलने से बनती हैं (आकृति १२) । यहाँ तक कि वह अन्त में दिल के दाईं ओर ऊपर के खाने में उन दो बड़ी नालियों के द्वारा जिनका वर्णन आकृति ११ में किया गया है जाकर पहुँचता है । यह अशुद्ध रुधिर फिर फेफड़ों में शुद्ध होकर दिल के बाईं ओर जाता है और दिल

फेफड़—८ (8) दिल—९ (9) पाकाशय—१० (10) कलेजा—११ (11) छोटी आँत—१२ (12) बड़ी आँत—१३ (13) पित्त की थैली ।

इस शुद्ध रुधिर को फिर मूल धमनी के द्वारा शरीर के भिन्न भिन्न भागों में पहुंचाता है और वह प्रत्येक स्थान से लौट कर फिर दिल में आ जाता है और नवीन होकर नये चक्कर के लिये उद्यत होता है। सारांश यह कि मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक यही क्रम सदा होता रहता है।

दिल के ऊपर के दोनों ख़ाने एकही समय में सिकुड़ते और रुधिर को निकालते हैं और ठीक उसी समय नीचे के दोनों ख़ाने फैल कर उस निकले हुए रुधिर को ले लेते हैं। फिर जब नीचे के दोनों ख़ाने सिकुड़ते और रुधिर को फेफड़ों और शरीर के अन्य भागों में पहुँचाते हैं तो ऊपर के ख़ाने फैल कर फेफड़ों और शरीर के भिन्न भिन्न भागों से रुधिर को ले लेते हैं, अतएव यह क्रिया इसी प्रकार होती रहती है कि जब ऊपर के ख़ाने सिकुड़ते हैं तब नीचे के फैल जाते हैं और जब नीचे के सिकुड़ते हैं तब ऊपर के फैल जाते हैं। यह क्रमशः सिकुड़ना और फैलना लगातार होता रहता है और इसी के द्वारा जीवन भर शरीर के सम्पूर्ण भागों में रुधिर बराबर पहुँचता रहता है। छाती के बाईं ओर पूरा हाथ रखने से यह क्रिया विदित हो सकती है।

रुधिर के प्रत्येक बूँद को अपने चक्कर के पूर्ण करने में तीस सेकण्ड लगते हैं। अर्थात् उसको दिल के दाईं ओर के ऊपर के ख़ाने से चल कर फिर वहीं लौट आने में तीस सेकण्ड लगते हैं।

इसी रीति से दिल के द्वारा रुधिर शरीर के भिन्न भिन्न भागों में दौड़ता रहता है।

रुधिर की वह नालियाँ जो शुद्ध रुधिर को सम्पूर्ण शरीर में पहुँचाती हैं **धमनियाँ** कहलाती हैं और जो शरीर के मैले रुधिर को दिल में पहुँचाती हैं **शिरायें** कहलाती हैं।

धमनियाँ कुछ मांस की गहराई में होती हैं, परन्तु शिरायें साधारण रीति से उतनी गहराई में नहीं होतीं, वरन् शरीर के प्रत्येक भाग में खाल पर दिखाई देती हैं और विशेष कर हाथों की पीठ पर भली भाँति दिखाई देती हैं।

रुधिर धमनियों में कुछ रुक कर और कुछ वेग तथा झटके के साथ वहता है। किन्तु शिराओं में क्रमानुसार धमनियों की अपेक्षा बहुत ही धीमी चाल के साथ वहता है। बाल के सदृश सूक्ष्म नालियाँ जिनका वर्णन आ चुका है और जो अधिक विस्तार के साथ आकृति १२ में दिखाई गई हैं वह सब से छोटी धमनियों और शिराओं को परस्पर मिलाती हैं। इन नालियों में रुधिर बहुत धीरे धीरे चक्कर करता है।

---

(8) दिल—९ (9) पाकाशय—१० (10) कलेजा—११
(11) छोटी आंत—१२ (12) बड़ी आंत—१३ (13) पित्त की थैली।

चौथा अध्याय

साँस के अङ्ग

तीसरे अध्याय में तुम पढ़ चुके हो कि जब बैंगनी रंग का अशुद्ध रुधिर फेफड़ों में हो कर जाता है तो उसका बैंगनी रंग जाता रहता है और वह शुद्ध होकर अपने स्वाभाविक रंग पर आ जाता है और पूर्णतया लाल हो जाता है।

अब यह बात विदित करने योग्य है कि रुधिर फेफड़ों में पहुँच कर किस प्रकार स्वच्छ होता है, परन्तु इस रीति के विदित करने के पहिले इस बात का जानना अत्यन्त आवश्यक है कि फेफड़े क्या हैं और किस काम आते हैं और उनसे मुख्य अभिप्राय क्या है।

यदि गले के नीचे उस स्थान पर जहाँ हँसली की हड्डी है उँगली रख कर गले को दबायें तो भीतर की ओर एक कड़ी नाली जान पड़ेगी और इसको कुछ बलपूर्वक दबाने से चित्त घबड़ाने लगेगा। यह नली नाक के गढ़े और मुँह के पीछे के भाग से जा मिली है (आकृति १३)। यह तो सब जानते हैं कि साँस लेते समय जो हवा हमारे शरीर के भीतर जाती है या उससे बाहर

को निकलती है, वह साधारण रीति से नाक ही के छेदों से होकर जाती है और कभी ऐसा भी होता है कि साँस मुँह की ओर से आने
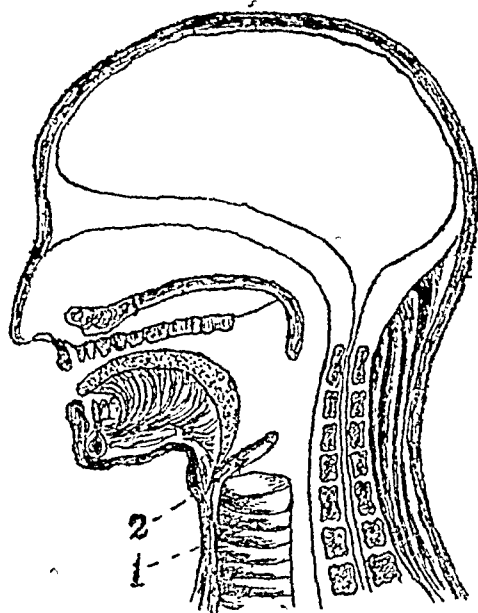
आकृति १३

१ (1)—साँस की नली—२ (2) साँस की नली का ढकना।

जाने लगती है परन्तु यदि ध्यान से देखो तो विदित होगा कि दोनों दशाओं में साँस का आना जाना इसी नली के द्वारा होता है इसलिए इस को **साँस की नली** (आकृति १३) कहते हैं।

यह नली मुँह के पीछे से होकर छाती में चली गई है और कुछ दूर नीचे जाकर दो शाखाओं में विभाजित हो गई है। इन

फफड़े—८ (8) दिल—९ (9) पाकाशय—१० (10) कलेजा—११ (11) छोटी आँत—१२ (12) बड़ी आँत—१३ (13) पित्त की थैली।

शाखाओं में से एक दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर को जाती है (आकृति १४)। इनमें से प्रत्येक शाखा फिर वहुत सी छोटी छोटी शाखाओं में विभाजित हो जाती है और यह सब छोटी छोटी
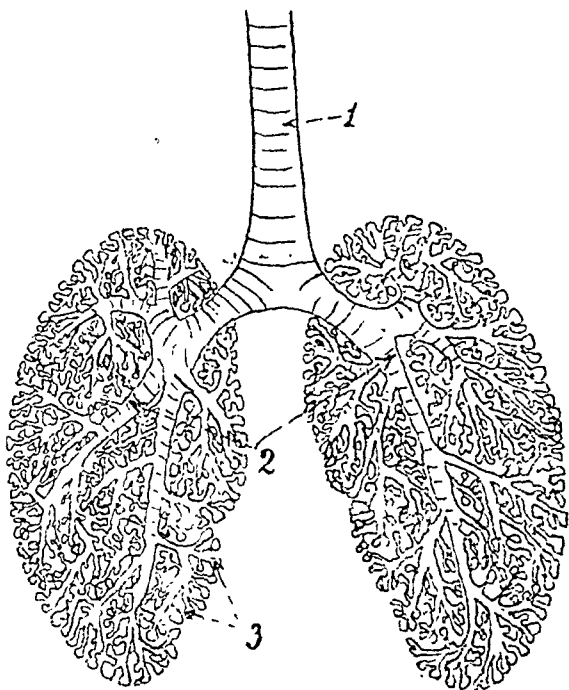
आकृति १४

शाखायें और भी अधिक छोटी छोटी शाखाओं में विभाजित हो जाती हैं और इसका ऐसा क्रम वँध जाता है कि शाखाओं से

शाखायें फूटती ही चली जाती हैं, यहाँ तक यह दशा हो जाती है कि बाल के सदृश सूक्ष्म नालियाँ हो जाती हैं। इन सूक्ष्म नालियों में से प्रत्येक लगभग सत्तरह सौ छोटे छोटे ख़ानों में जिनकी दीवारें बहुत ही पतली होती हैं समाप्त होती हैं। यह छोटे छोटे ख़ाने चूंकि साँस की नली के द्वारा बाहरी हवा से मिले होते हैं इसलिए सदा हवा से भरे हुए रहते हैं इसी कारण इन ख़ानों को **हवा के ख़ाने** कह सकते हैं।

छाती के प्रत्येक ओर लगभग तीस लाख इसी प्रकार के ख़ाने होते हैं। चूंकि इन सब ख़ानों का आकार स्वच्छता के साथ छोटे से चित्र में दिखाना बहुत ही कठिन काम है इसलिए इस आकृति में केवल थोड़े से दिखाये गये हैं।

छाती के दोनों ओर साँस की नली की बहुत सी शाखायें उन के ख़ानों सहित पतली सी झिल्ली से मढ़ी हुई हैं। यह झिल्ली एक थैली की दशा में होती है। साँस की नली के दोनों ओर की दोनों थैलियों को **फेफड़े** कहते हैं जो कि साधारणतः हलके गुलाबी रङ्ग के होते हैं।

फेफड़े छाती की भीतरी दीवारों के साथ सदैव जुड़े रहते हैं और दिल को सन्मुख के थोड़े से भाग के अतिरिक्त लगभग चारों ओर से घेरे रहते हैं (आकृति १५) और छाती के भीतर का शून्य स्थान इन से ही भरा रहता है।

दिल का अशुद्ध रुधिर दोनों फेफड़ों में दो बड़ी नालियों के द्वारा जिनमें से एक दाहिने और दूसरे बायें फेफड़े में होकर
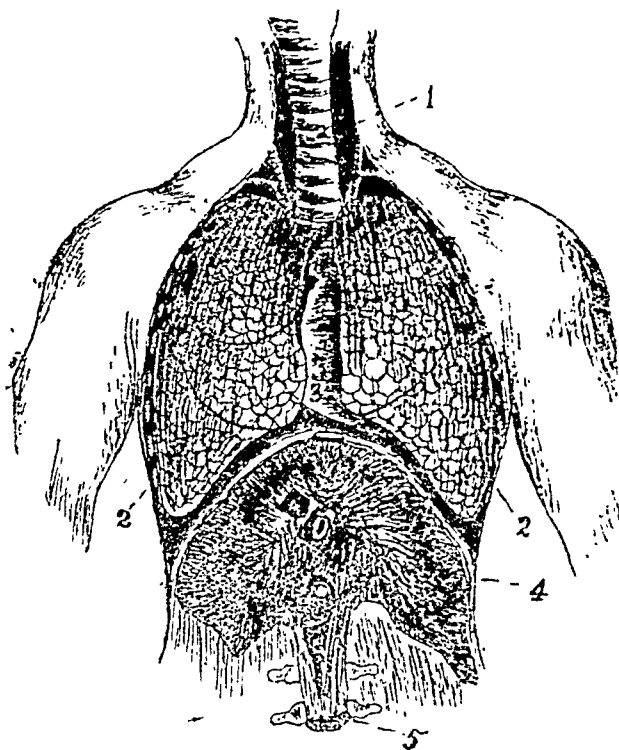
आकृति १५

१ (1) साँस की नली—२ (2) फेफड़े—३ (3) दिल—४ (4) फेफड़ों के नीचे की पतली सी बड़ी मिहराबदार पेशी—५ (5) रीढ़।

जाती है पहुँचता रहता है। यह नालियाँ फेफड़ों में पहुँचते ही बहुत सी छोटी छोटी शाखाओं में विभाजित हो जाती हैं और

फिर यह शाखायें भी और शाखाओं में बँटती हुई क्रमशः बाल के सदृश सूक्ष्म नालियों में विभाजित हो जाती हैं और फिर यह सब मिल कर बड़ी बड़ी नालियाँ बनाती हैं यहाँ तक कि अन्त में चार बड़ी नालियाँ बन जाती हैं, जिन के द्वारा फेफड़े से रुधिर दिल में आता है। फेफड़ों में उपर्युक्त बाल के सदृश सूक्ष्म नालियों की इतनी अधिकता है कि प्रत्येक छोटे हवा के ख़ाने के चारों ओर उन नालियों का एक घना जाल सा बन जाता है।

अब सुगमता से समझ में आ सकता है कि फेफड़े दो बड़ी थैलियाँ हैं जो हवा के छोटे छोटे अगणित ख़ानों का योग हैं, जिन पर बाल के सदृश सूक्ष्म रुधिर की नालियों का घना जाल लिपटा हुआ है।

फेफड़े और साँस की नली साँस लेने के लिए हैं जैसा कि हम अब बताते हैं।

साँस के भीतर जाते समय नाक तथा मुँह से सन्निकट की हवा मुँह के पिछले भाग से जाती है और अगनित छोटे छोटे हवा के ख़ानों में भर जाती है और फेफड़े इस हवा के बल से रबड़ के थैले की भाँति फैल जाते हैं। फिर साँस के बाहर आने में लगभग सम्पूर्ण हवा फेफड़ों से निकल जाती है।

प्रत्येक साँस में कुछ हवा फेफड़ों में जाकर फिर बाहर निकल आती है। इसी को साँस लेना कहते हैं।

अब यह बताया जायगा कि हम साँस किस प्रकार लेते अर्थात् फेफड़ों में हवा किस प्रकार आती जाती है।

पहिले अध्याय में यह बताया गया था कि छाती चारों ओर से पसलियों द्वारा घिरी हुई है और सामने की ओर छाती की हड्डी से और पिछली ओर रीढ़ से जुड़ी हुई है। यह पसलियाँ पुष्ट चपटी पेशियों से ढकी हुई हैं जो शरीर की दूसरी पेशियों की भाँति घट बढ़ सकती हैं। जब पेशियां सिकुड़ती हैं तो पसलियाँ उन के साथ ऊपर को खिँच जाती हैं और उन के नीचे की बड़ी पसलियां उन के स्थान पर आ जाती हैं। इस से छाती दोनों ओर फैल जाती है।

पसलियों के सामने के सिरों के ऊपर उठने से छाती की हड्डी आगे की ओर को बढ़ जाती है और इस से छाती की चौड़ाई आगे पीछे की ओर से अधिक हो जाती है।

इसी प्रकार जब पसलियों के बीच की पेशियाँ सिकुड़ती हैं तो छाती का विस्तार आगे पीछे और दाईं तथा बाईं ओर अधिक हो जाता है। फिर जब यह पेशियाँ फैल कर अपने स्थान पर आ जाती हैं तो पसलियां छाती की हड्डी सहित नीचे जा बैठती हैं और छाती का भीतरी विस्तार न्यून हो जाता है।

परन्तु छाती का भीतरी विस्तार एक और प्रकार से बढ़ता है:—

छाती के नीचे के भाग में और ठीक फेफड़ों के नीचे एक पतली किन्तु बड़ी पेशी है। इस से फेफड़ों के नीचे के भाग अथवा आधार ऐसी दृढ़ता से जुड़े रहते हैं जिस प्रकार कि इन की दीवारें छाती की दीवारों से जुड़ी रहती हैं। यह पेशी

पसलियां, छाती की हड्डी और रीढ़ से मिलने के कारण मिहराव की तरह हो गई है। इस मिहराव का पृष्ठ छाती की ओर झुका हुआ है (आकृति १५)। इस प्रकार इस पेशी से छाती पेट से पूर्णतया अलग हो गई है। शरीर की अन्य पेशियों की भांति यह पेशी भी सिकुड़ सकती है। जब यह सिकुड़ती है तो सम्पूर्ण नीचे को खिंच जाती है और चपटी हो जाती है यही कारण है कि छाती का भीतरी विस्तार ऊपर से नीचे को बढ़ जाता है।

परन्तु जब यह पेशी फैल कर ऊपर को उठती है तो छाती का भीतरी विस्तार कम हो जाता है।

इस पेशी के सिकुड़ने पर जब छाती के भीतर ऊपर से नीचे को विस्तार बढ़ता है तो साथ ही पसलियों के बीच की पेशियाँ भी सिकुड़ने लगती हैं और छाती को पीछे से आगे को ओर और दाईं से बाईं ओर बढ़ाने लगती हैं। इसप्रकार छाती एक ही समय में प्रत्येक ओर को बढ़ जाती है।

छाती के इस प्रकार फैलने से फेफड़ों के बाहर और छाती के भीतर सम्भव था कि कुछ जगह ख़ाली रहती परन्तु फेफड़े ऊपर की ओर छाती की भीतरी दीवारों से और नीचे की ओर मिहरावदार पेशी से जुड़े रहते हैं। इसलिए जो स्थान इस प्रकार ख़ाली होता है उस को फेफड़े ही फैल कर पूरित कर देते हैं। अतएव, छाती के भीतर शून्य स्थान कदापि नहीं रह सकता। सारांश यह है कि छाती के फैलते समय फेफड़े भी फैल जाते हैं और इसप्रकार

हवा नाक या मुँह तथा हवा की नालियों के द्वारा फेफड़ों में आती है। फेफड़ों में हवा के आने की यही विधि है।

फेफड़ों में वायु के आते ही छाती के नीचे की बड़ी बड़ी पेशियाँ और पसलियों के बीच की पेशियाँ अपने अपने स्थान पर आ जाती हैं, और इस प्रकार छाती का भीतरी विस्तार कम कर देती हैं। यह पेशियाँ अपने स्थान पर जब लौटती हैं तो फेफड़ों को चारों ओर से दबाती हैं जिस से फेफड़ों के भीतर आई हुई वायु बाहर निकल जाती है। इस प्रकार वायु फेफड़ों से बाहर निकला करती है। छाती के नीचे की मिहराबदार पेशी तथा पसलियों के बीच की पेशियाँ जिन के द्वारा हम साँस लेते हैं साँस लेने की विशेष पेशियाँ कही जा सकती हैं। जब इन का सिकुड़ना तथा फैलना बन्द हो जाता है तो साँस का आना जाना भी बन्द हो जाता है और मृत्यु हो जाती है। इन पेशियों का इस प्रकार सिकुड़ना तथा फैलना प्रत्येक मिनट में सत्रह बार होता है और इस प्रकार हम प्रत्येक मिनट में सत्रह बार साँस लेते हैं। यह पेशियाँ रात दिन अपना काम लगातार करती रहती हैं चाहे हम जागते हों या सोते हों। यही नहीं हम चाहें या न चाहें यह लगातार साँस लेती रहती हैं अतएव साँस की पेशियाँ भी दिल की पेशियों की भाँति हमारे अधिकार में नहीं हैं।

फेफड़ों के विषय में अब बहुत सी बातें ज्ञात हो गई हैं अर्थात् यह साँस लेने के साधन हैं और इन से किस प्रकार हम साँस लेते हैं, किन्तु हम को यह नहीं ज्ञात हुआ कि साँस लेने की

आवश्यकता तथा उद्देश्य क्या है। इस का मुख्य अभिप्राय यह है कि फेफड़ों में जो मैला रुधिर आया है वह शुद्ध हो जाय।

मैला रुधिर किस प्रकार शुद्ध होता है इस के जानने के पहिले हमें यह देखना चाहिये कि जो वायु फेफड़ों में आती है उस में [illegible]कलने से पहिले कोई रासायनिक परिवर्तन होता है या नहीं। सम्भव है कि कोई यह विचार करे कि जैसी वायु फेफड़ों से बाहर निकलती है वैसी ही भीतर जाती है परन्तु यह भूल है। इस अन्तर को भली भाँति समझने के लिए अपनी उँगलियों पर साँस छोड़ो। इस से तुम को विदित होगा कि जो वायु फेफड़ों के भीतर से निकलती है वह सन्निकट की वायु से अधिक गर्म होती है।

किसी ठंडी वस्तु पर जैसे स्लेट या दर्पण पर साँस लेने से जल की बहुत छोटी छोटी बूँदें दिखाई देंगी।

यदि किसी खोखले बाँस की नली के द्वारा साफ़ चूने के जल में जो किसी शीशे के गिलास में भरा हो फूंकते रहें तो वह जल दूध की भाँति सफ़ेद हो जायगा।

यह दशायें साधारण वायु से उत्पन्न नहीं हो सकतीं इस से सिद्ध हुआ कि फेफड़ों से निकलने वाली वायु बाहर की वायु से सर्वथा भिन्न होती है। अतएव जो वायु फेफड़ों के भीतर जाती है उसमें बाहर निकलने से पहिले कुछ परिवर्तन हो जाता है। अब यह देखना है कि यह परिवर्तन क्या है और किस प्रकार होता है।

जो वायु फेफड़ों में जाती है वह उस मैले रुधिर के मैल

!) छोटी [illegible]त—१ [illegible] आंत—१३ (13) पित्त का थैला

को जो शरीर के भिन्न भिन्न भागों से दिल के मार्ग से होकर वहाँ पहुँचता है खींच लेती है और इस प्रकार उस से युक्त होकर बाहर निकलती है। इस प्रकार फेफड़ों के भीतर की वायु में परिवर्तन होता रहता है जिस का वर्णन हम आगे चल कर करेंगे।

भीतर जाने वाली वायु जो शुद्ध होती है उस को हम शुद्ध वायु कहेंगे और जो वायु भीतर से बाहर को आती है और अशुद्ध होती है उस को हम अशुद्ध वायु कहेंगे।

यह अशुद्ध वायु मोमबत्ती, काग़ज़, कोयला इत्यादि बहुत सी वस्तुओं के वायु में जलने से भी उत्पन्न होती है।

इन में से किसी वस्तु को लो और लोहे के लग भग एक हाथ लम्बे तार में बाँध कर जलाओ और तुरन्त एक बड़े शीशे के गिलास में लटका दो और कुछ देर पश्चात् निकाल लो और गिलास में चूने का साफ़ और ताज़ा पानी डालो और फिर कुछ समय तक हिलाओ। इस से यह दूध की भाँति सफ़ेद हो जायगा। इस से यह सिद्ध हुआ कि वायु में कुछ वस्तुओं के जलने से वैसी ही अशुद्ध वायु उत्पन्न होती है जैसी कि फेफड़ों से निकलती है।

अब हम यह अनुमान करते हैं कि अशुद्ध वायु फेफड़ों से सदैव निकलती रहती है तो हमारे शरीर के भीतर कोई अग्नि अवश्य जलती रहती है, जिस से यद्यपि कोई लौ अथवा धुआँ निकलता दिखाई नहीं देता तो भी उस के वहाँ होने में कोई

सन्देह नहीं है। हमारे शरीर के गर्म रहने और साँस के गर्म निकलने से भी शरीर के भीतर अग्नि का होना सिद्ध होता है। इस स्वयं धीरे धीरे जलने वाली अग्नि का ज्ञान यद्यपि हम को प्रकाश तथा धुयें से नहीं होता परन्तु शरीर की गर्मी और अशुद्ध की गर्मी से उस का होना निश्चय है। इस भीतरी ज्वाला से भाप भी बनती है जिस को हम साँस के साथ देखते हैं।

यदि जलती हुई बत्ती किसी शीशे के गिलास से इस प्रकार बन्द कर दी जाय कि वायु भीतर प्रवेश न कर सके तो वह तत्काल ही बुझ जायगी। इस से यह सिद्ध होता है कि कोई वस्तु वायु के बिना जल नहीं सकती। जब अग्नि वायु के बिना नहीं जल सकती, तो सम्भव है कि हमारे शरीर के भीतर की अग्नि उस वायु से सुलगती रहती हो जो हम साँस के द्वारा जन्म से मृत्यु तक भीतर ले जाते हैं और सम्भव है कि वह मैले तथा निकम्मे पदार्थ जो हमारे शरीर के अंगों के काम करने से उत्पन्न होते हैं इसी अग्नि में स्वाहा हो कर अशुद्ध वायु की उत्पत्ति करते रहते हों।

अशुद्ध वायु और भाप जो शरीर के निकम्मे और व्यर्थ भागों के जलने से उत्पन्न होती हैं बाल सी सूक्ष्म रुधिर की नालियों की अत्यन्त पतली दीवारों में से होकर रुधिर में मिल जाती हैं, जिस से वह अशुद्ध हो जाता है और उस का रंग बैंगनी पड़ जाता है।

इस ढंग से रुधिर शरीर के व्यर्थ अंशों को लेकर और दिल के दाहिने खाने से होकर फेफड़ों में पहुँचा देता है।

अब यह देखना है कि बैंगनी रंग का अशुद्ध रुधिर फेफड़ों में आकर किस प्रकार अपने मैल को दूर कर के फिर शुद्ध लाल रंग का हो जाता है ।

हम यह देख चुके हैं कि साँस के साथ बाहर की शुद्ध वायु फेफड़ों में प्रवेश करती है अर्थात् वायु के ख़ानों में भर जाती और इन ख़ानों की पतली दीवारों पर की अगणित बाल के सदृश सूक्ष्म रुधिर की नालियों के बहुत ही निकट होने के कारण रुधिर के पास पहुँच जाती है । वायु के ख़ानों और रुधिर की नालियों की दीवारें ऐसी पतली होती हैं कि शुद्ध वायु सुगमता से रुधिर में मिल जाती है और इस के बदले अशुद्ध वायु और भाप रुधिर से अलग होकर वायु के ख़ानों में आ जाती हैं और मैला रुधिर अशुद्ध वायु तथा भाप से अलग होने और शुद्ध वायु से मिलने के पश्चात् फिर शुद्ध हो जाता है और उस का रंग फिर बैंगनी से लाल हो जाता है । वायु के ख़ानों से अशुद्ध वायु और भाप साँस के साथ फेफड़ों से बाहर निकल आती हैं ।

सारांश यह है कि साँस के द्वारा रुधिर का मैल दूर होता रहता है ।

पाँचवाँ अध्याय

भोजन का पचना

हम वर्णन कर चुके हैं कि हमारे प्रत्येक काम के करने में शरीर का कुछ भाग क्षय होता रहता है। चौथे अध्याय में यह भी ज्ञात हो चुका है कि यह निकम्मा अंश शरीर के भीतर किस प्रकार धीरे धीरे जल कर सदैव अशुद्ध वायु के रूप में परिवर्तित हुआ करता है और अंत में रुधिर उस को शरीर के बाहर निकाल देता है। अब यह आवश्यक है कि जिस प्रकार यह शरीर के अंश लगातार नष्ट होकर बाहर निकलते रहें उसी प्रकार शरीर की इस हानि की पूर्त्ति भी होती रहे नहीं तो अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होने का भय है।

रुधिर और उस के सञ्चार के वर्णन में यह बता दिया गया है कि रुधिर भोजन से ऐसे अंश ले लेता है कि जो व्यय हुए अंशों की पूर्त्ति कर सकें। इस अध्याय में हम बतायेंगे कि रुधिर यह पूर्त्ति किस प्रकार करता है।

पाकाशय में भोजन न्यूनाधिक स्थूलरूप में पहुँचता है। इसलिए उस में से शरीर के नष्ट हुए अंशों की पूर्त्ति ऐसी दशा में नहीं हो सकती अर्थात् भोजन के अंश इस दशा में रुधिर से जाकर नहीं मिल सकते। पहिले भोजन के लाभदायक तथा बल-

वर्द्धक अंश व्यर्थ अंशों से अलग होते हैं, तत्पश्चात् लाभदायक अंश द्रवरूप में परिवर्तन किये जाते हैं इस से रुधिर उन को पाकाशय की भीतरी वाल के सदृश सूक्ष्म नालियों के द्वारा खींच लेता है इसी को हम प्रायः भोजन का पचना कहते हैं। आगे चल कर हम बतायेंगे कि यह सब कार्य्य किस प्रकार सम्पादित होता है।

कल्पना करो कि हम चावल अथवा रोटी, मांस अथवा दाल के साथ जो घी से छौंकी हुई है खा रहे हैं।

पचने का काम मुँह ही से आरम्भ हो जाता है। मुँह जीभ और दाँत मिल कर एक छोटी सी चक्की का काम देते हैं। दाँत भोजन को पीस कर थूक की सहायता से एक प्रकार का चिपचिपा तथा पतला द्रव पदार्थ बना देते हैं। थूक जैसा कि सब जानते हैं मुँह में सदैव आर्द्रता पहुँचाता रहता है। छोटी छोटी गिलटियां के तीन जोड़े हैं जिनसे बहुत सी पतली पतली नलियों के द्वारा थूक मुँह में गिरता रहता है। जीभ का यह काम है कि वह भोजन के प्रत्येक अंश को दाँतों के नीचे लाये, तत्पश्चात् मुँह के पीछे की ओर ले जाये जहाँ से वह पाकाशय में जा गिरता है।

भोजन मुँह में दाँत, और जीभ की सहायता से भली भांति चबाया जाता है तो थूक के साथ भली भाँति मिल जाता है और यह थूक भोजन के कुछ अंशों को द्रव रूप में बदल देता है। चावल और रोटी पर तो थूक अपना काम अच्छे प्रकार
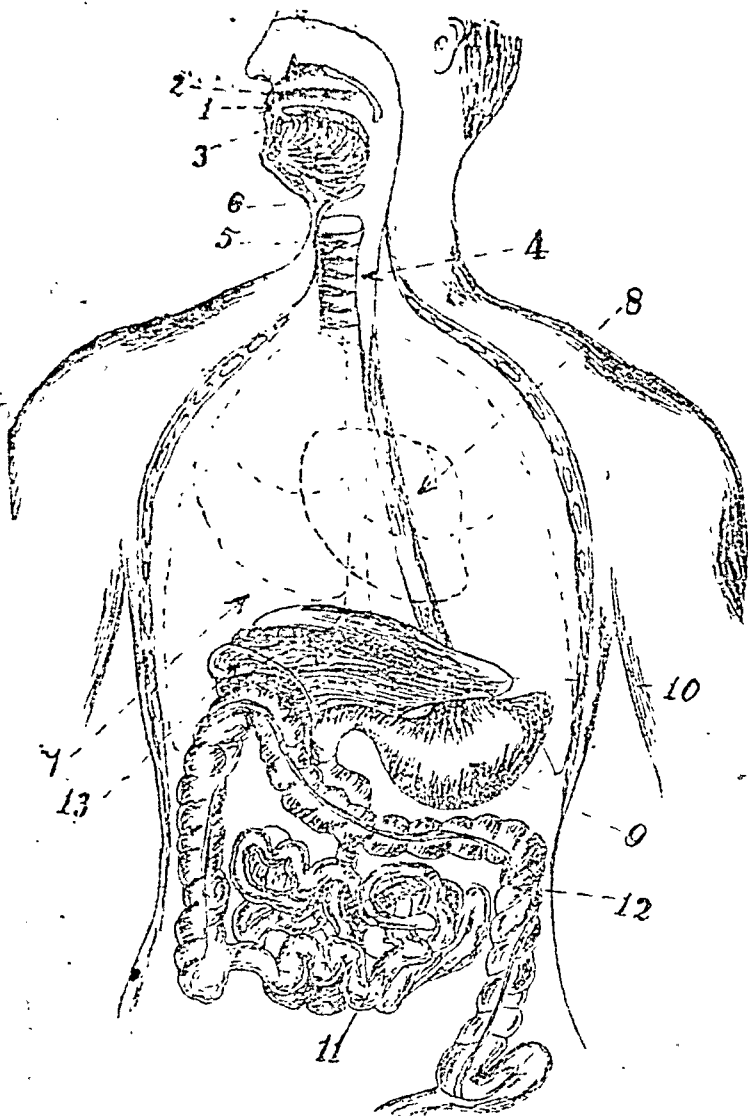
आकृति १६

1) मुँह—२ (2) दाँत—३ (3) जीभ—४ (4) भोजन की नाली—5) साँस की नाली —६ (6) साँस की नाली का ढकना—७ (7) फेफड़े—८ (8) दिल—९ (9) पाकाशय—१० (10) कलेजा—११) छोटी आँत—१२ (12) आँत—१३ (13) पित्त की थैली।

से करता है, किन्तु मांस, दाल, घी तथा मक्खन पर बहुत ही कम प्रभाव डाल सकता है। चावल तथा रोटी के अधिकांश को द्रव रूप में होने के कारण रुधिर जो मुँह की सूक्ष्म नालियों में बहता है तत्काल ही खींच लेता है।

भोजन के शेष भाग जैसे मांस और दाल, तथा चावल और रोटी के वह भाग जो अभी द्रव रूप में नहीं हुए हैं जीभ के द्वारा गले में उतार दिये जाते हैं। फिर यह एक नाली के द्वारा जो ९ इंच लम्बी होती है पाकाशय में जा गिरते हैं इसलिए यह नाली **भोजन की नाली** कहलाती है।

भोजन की नाली जो पाकाशय तक चली गई है साँस की नाली के ठीक पीछे स्थित है (आकृति १३ और १६)। इस का क्या कारण है कि यह दोनों नालियाँ इतनी पास पास हैं तो भी भोजन सदैव भोजन वाली ही नाली में से जाता है और साँस की नाली में से होकर नहीं जाता।

यदि आकृति १३ अथवा १६ को देखो तो साँस की नाली के ऊपर के भाग पर कोई वस्तु एक छोटे ढकने के सदृश दिखाई देगी। जब भोजन मुँह के पीछे पहुँचता है और भोजन की नाली में उतरने लगता है तो यह ढकना गिर पड़ता है और साँस की नाली का मुँह बन्द कर देता है और इस प्रकार भोजन को साँस की नाली में जाने नहीं देता। जैसे ही भोजन भोजनवाली नाली में उतर जाता है वैसे ही तुरंत यह ढकना अपने स्थान पर आ जाता है। इसलिए हमको चाहिए कि भोजन करते समय

बात चीत कदापि न करें, क्योंकि सम्भव है कि भोजन का कुछ भाग साँस की नाली में चला जाय और दुख देवे।

कदाचित् कोई यह विचार करे कि भोजन भोजनवाली नाली में से इस प्रकार नीचे जाता है जैसे खड़ी नाली में से जल बह जाता है, परन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि यदि ऐसा होता तो लेट कर या झुक कर कोई वस्तु निगली न जा सकती। भोजन वाली नाली की मोटी दीवारों में गोल गोल पेशियाँ होती हैं। जब भोजन-वाली नाली में कुछ भोजन जाता है तब सब से ऊपर-वाली पेशियाँ चारों ओर से सिकुड़ जाती हैं और भोजन को दबा कर नीचे उतार देती हैं और इसी प्रकार क्रमशः नीचे की पेशियाँ और नीचे उतार देती हैं और अन्त वाली पेशियाँ उस को पाकाशय में पहुँचा देती हैं।

पाकाशय एक बड़ा थैला है जिसमें लगभग दो सेर पानी समा सकता है। यह अधिकतर बाईं ओर फेफड़ों के ठीक नीचे स्थित है।

पाकाशय का थैला बहुत सी पेशियों से बना है। यह पेशियाँ दिल की पेशियों की भाँति स्वयं सिकुड़ती तथा फैलती रहती हैं अर्थात् इन पेशियों का काम हमारी इच्छा के अनुसार नहीं होता और हमारा इन पर कोई अधिकार नहीं है। पाकाशय की भीतरी दीवारों पर बहुत सी छोटी छोटी गिलटियाँ होती हैं। जब भोजन पाकाशय में पहुँचता है तो इन गिलटियों में से एक प्रकार का रस निकलता है जो मुँह के भीतर की गिलटियों के थूक के सदृश होता है।

पाकाशय में भोजन के आते ही उसकी पेशियां सिकुड़ने और फैलने लगती हैं और इस प्रकार भोजन को पाकाशय के एक भाग से दूसरे भाग में ढकेलती हैं और इस प्रकार भोजन पाकाशय के रसों के साथ मिल कर एक गाढ़ी पीले रंग की चिपचिपी पतली लेई के सदृश बन जाती है।

इस से पहिले यह बता दिया गया है कि थूक जो चावल, रोटी और तरकारियों को द्रव रूप में परिवर्तन कर देता है मांस, अंडे, दाल तथा घी पर कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकता। इन को केवल पाकाशय का रस ही द्रव रूप में परिवर्तित कर देता है, किन्तु घी और चर्बी इनसे भी नहीं पचते। अब भोजन के अधिकतर भाग को जो इस प्रकार द्रव रूप में परिवर्तित हो जाता है रुधिर अपनी बाल के सदृश सूक्ष्म नालियों के द्वारा जो पाकाशय के सम्पूर्ण भीतरी दीवारों पर फैली हुई हैं खींच लेता है।

वह गाढ़ा द्रव भाग जो अब पाकाशय में शेष रह जाता है अधिकतर चर्बी और घी अथवा चावल, रोटी, तरकारी, मांस, तथा दाल का अनपचा हुआ भाग होता है। इन में से रुधिर अपने हेतु कुछ नहीं ले सकता इसलिए यह **आँतों** में चला जाता है। आँत एक बड़ी नाली है जो पाकाशय के दाहिनी ओर से आरम्भ होती है (आकृति १६)। यह लम्बाई में शरीर की लम्बाई का पाँच गुना अर्थात् लगभग २८ फ़ीट होती है। यह दो भागों में विभाजित होती है। ऊपर का भाग लगभग २० फ़ीट लम्बा और डेढ़ इंच व्यास का होता है और नीचे का

भाग लगभग ६ फ़ोट लम्बा और व्यास में तीन इंच होता है। ऊपर का भाग जिसको **छोटी आँत** कहते हैं पाकाशय के नीचे इस प्रकार लिपटा हुआ होता है कि जहाँ तक हो सके बहुत ही कम स्थान रोके (आकृति १६)। किन्तु इस के नीचे का चौड़ा भाग जोकि **बड़ी आँत** कहलाता है पहिले दाईं ओर से पाकाशय के ऊपर चला जाता है, फिर उस के नीचे होकर बाईं ओर को जाता है फिर अन्त में नीचे को उतर जाता है (आकृति १६)।

इन आँतों की दीवारें पाकाशय की नली की दीवारों की भाँति पेशियों से बनी हुई हैं जो स्वयं सिकुड़ती और फैलती रहती हैं। आँतों के भीतर की ओर अगणित छोटी छोटी गिलटियाँ भी हैं।

आकृति १६ को देखने से पाकाशय के ऊपर और इस के कुछ दाईं ओर एक बड़ी गिलटी दिखाई देती है, यही **पित्ताशय** है जो आँतों में एक प्रकार का रस डालता रहता है जिस को पित्त कहते हैं। यह भोजन के चिकने अंशों अर्थात् घी , तेल तथा चर्बी इत्यादि पर अपना प्रभाव डालता है और इन के छोटे छोटे कणों को और भी छोटे कणों में तोड़ डालता है। जब पित्त की आवश्यकता नहीं होती तो यह पित्ताशय में एकत्रित होता रहता है और समय पर आवश्यकतानुसार आँत में टपकता है।

पाकाशय के पीछे एक गिल्टी होती है यह आकृति १६ में दिखलाई नहीं गई है। यह आँत में एक विशेष रस डालती रहती

है जो रोटी, चावल, तरकारी, मांस, दाल, चर्बी तथा घी के अनपचे अंशों पर अपना प्रभाव डालती है और इस प्रकार को पचने की अन्तिम क्रिया को पूर्ण करती है।

इन दोनों गिलटियों के रस से भोजन बहुत ही पतला आंतों में दूध के सदृश सफ़ेद बन जाता है।

आँत की पेशियों के सिकुड़ जाने से यह दूध के सदृश भोजन क्रमशः आगे को बढ़ता है। मार्ग में रुधिर की छोटी छोटी धमनियाँ जो आँतों के भीतर जाल सा बनाये हुए हैं, इस में से बलदायक अंश ले लेती हैं और इस प्रकार रुधिर में भोजन का बलदायक अंश आ जाता है। आँतों की भीतरी दीवारों से भी इसी प्रकार रस निकलता है जिस प्रकार कि पाकाशय के भीतरी दीवारों से निकलता है। यह भोजन के उन अंशों को पतला कर देता है जो अब तक किसी दूसरे रस से पतले नहीं हुए। इसप्रकार भोजन का कोई अंश जो बलदायक हो रुधिर में जाने से नहीं बचता।

जब तक यह दूध के सदृश भोजन छोटी आँतों के अन्त तक पहुँचता है उस समय तक रुधिर उस में से बलदायक अंश ले चुकता है। आगे चल कर भोजन दृढ़ रूप में हो जाता है और अब इसमें केवल ऐसे अंश शेष रह जाते हैं जो किसी काम के नहीं होते। यह प्रायः दिन में एक या दो बार पाख़ाने के रूप में बाहर निकल जाता है।

इस प्रकार रुधिर उस भोजन से जो हम खाते हैं वह बल-

दायक अंश ले लेता है जो शरीर के नष्ट हुए भागों की हानि की पूर्त्ति करता है। भोजन के पचने के विषय में जो कुछ ऊपर वर्णन हुआ है उस से स्पष्ट विदित होता है कि यदि भोजन दाँतों से यथोचित रीति से न चवाया जाय तो उसे थूक भली भाँति नहीं मिलेगा और इस से वह पतला नहीं बन सकेगा। ऐसी दशा में पाकाशय और आँतों को दाँतों का काम करना पड़ेगा जिस के कारण उन को बहुत कुछ कष्ट और परिश्रम उठाना पड़ेगा, जिस का परिणाम यह होगा कि पाकाशय तथा आँतों में रोग उत्पन्न हो जायँगे और विना पचा हुआ बहुत सा भोजन शरीर को विना लाभ पहुँचाये हुए निकल जायगा।

सारांश यह है कि यदि हम हृष्ट पुष्ट रहना चाहें तो भोजन को भली भाँति चवा कर खायें जिस से वह मुँह में पतला होकर पचने के योग्य हो जाय और पाकाशय और आँतों को पचाने का काम बहुत न करना पड़े अर्थात् उन का काम सुगम और न्यून हो जाये।

छठा अध्याय

मस्तिष्क और स्नायु

हम देख चुके हैं कि शरीर की पेशियों के सिकुड़ने और फैलने से हमारे भिन्न भिन्न अंगों में कई प्रकार की गति उत्पन्न होती है। जब हम अपने हाथों, टाँगों अथवा किसी और अङ्ग को हिलाना जुलाना चाहते हैं तो उस की पेशियाँ तुरन्त ही सिकुड़ जाती हैं और हम अङ्ग को जिस प्रकार हिलाना चाहते हैं हिला सकते हैं। परन्तु कभी हम ने यह भी विचारा है कि यह पेशियाँ किस प्रकार जान जाती हैं कि हम उन को कब सिकोड़ना चाहते हैं। कदाचित् कोई यह कहे कि वह स्वयं सिकुड़ जाती हैं तो यह उसकी भूल है क्योंकि ऐसा कभी नहीं होता। इस के लिए एक उदाहरण लो। सम्भव है कि तुमने किसी ऐसे रोगी को देखा हो जिस का कोई अङ्ग गति-हीन और ज्ञान-हीन हो गया हो। ऐसा रोगी चाहे वह कितना ही उद्योग करे अपने निकम्मे अङ्ग को कभी हिला जुला नहीं सकता। यद्यपि उस की पेशियाँ सब नीरोग हों तो भी वह उस अङ्ग से कुछ काम नहीं ले सकता, इससे सिद्ध होता है कि हमारे शरीर के भिन्न भिन्न अङ्गों को हिलाने जुलाने के लिए पेशियों के अतिरिक्त और किसी वस्तु की भी आवश्यकता होती है।

शियाँ स्वयं यह नहीं जान सकतीं कि हम उनको कब सिकोड़ना चाहते हैं इस का समाचार उनको **मस्तिष्क** तथा **स्नायु** के द्वारा मिलता है ।

पहिले हम मस्तिष्क तथा स्नायु को देखेंगे कि यह हमारे हेतु क्या काम करते हैं:—
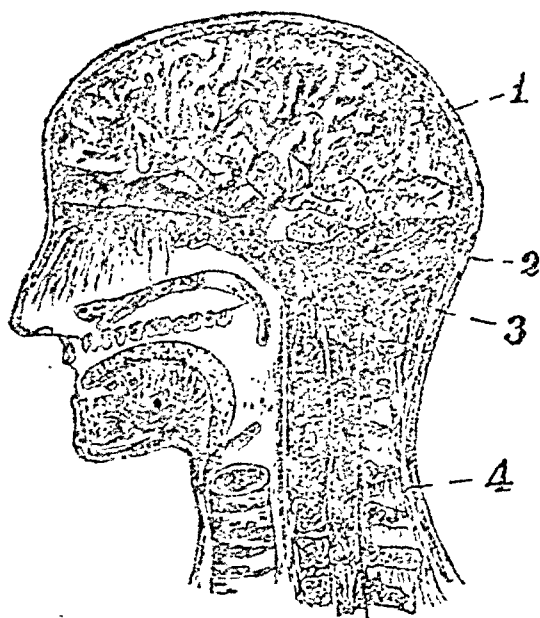
आकृति १७

१ (1) बड़ा मस्तिष्क—२ (2) छोटा मस्तिष्क—३ (3) रीढ़ की नस की जड़—४ (4) रीढ़ की नस ।

हम ऊपर वर्णन कर आये हैं कि मस्तिष्क खोपड़ी में सुरक्षित है । मनुष्य का मस्तिष्क तौल में प्रायः डेढ़ सेर होता है । सम्पूर्ण

मस्तिष्क और स्नायु ।

जीवधारियों में मनुष्य का मस्तिष्क सव से वड़ा होता है । उस के शरीर के समानुपात नहीं होता । देखो घोड़ा मनुष्य से कहीं वड़ा होता है तो भी उसका मस्तिष्क तौल में लगभग आध सेर होता है । मस्तिष्क के वड़े होने के कारण मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ और जीवधारियों की शक्तियों से वढ़ चढ़ कर होती हैं ।

आकृति १८—मस्तिष्क

जिन तत्त्वों से मस्तिष्क वना है वह मांस और पेशियों के तत्त्वों से पूर्णतया भिन्न हैं । यह एक प्रकार का नर्म गूदा सा होता है जिस में से एक भाग का रंग भूरा होता है और दूसरे का सफ़ेद । भूरा भाग मस्तिष्क के वाहर की ओर

श्रौर सफ़ेद भीतर की ओर होता है। मस्तिष्क के भीतर और बाहर बहुत सी धमनियाँ और शिरायें होती हैं।

आकृति १७ में हमने मस्तिष्क की भीतरी दशा को दिखाया है। इसका बायाँ आधा भाग अलग कर दिया गया है। आकृति १८ से यह प्रकट होता है कि मस्तिष्क ऊपर की ओर से कैसा दिखाई देता है।

मस्तिष्क दो भागों में विभाजित है। इन दोनों भागों के बीच में एक गहरी नाली सी बनी हुई है। इन आकृतियों के देखने से यह भी स्पष्टतया विदित होता है कि मस्तिष्क में बहुत से परत हैं और अनेक प्रकार की आकृतियाँ हैं जो एक दूसरे से गहरी नालियों से अलग हो गई हैं।

मस्तिष्क के दो भाग होते हैं (आकृति १७)। ऊपर का भाग जो सम्पूर्ण मस्तिष्क का $\frac{७}{८}$ है **बड़ा मस्तिष्क** कहलाता है और नीचे का भाग जो ऊपर के भाग से पीछे की ओर और कुछ नीचे की ओर स्थित है **छोटा मस्तिष्क** कहलाता है। यह भी बड़े मस्तिष्क के सदृश उसी भूरे और सफ़ेद गूदे से बना हुआ है।

मस्तिष्क का एक भाग खोपड़ी के पेंदे में से एक छिद्र के द्वारा नीचे को चला गया है और आगे बढ़ कर यह रीढ़ की सम्पूर्ण लम्बाई के साथ नीचे की ओर दूर तक चला गया है (आकृति १८ व २०)। मस्तिष्क का यह भाग **रीढ़ की नस** कहलाता है। ध्यान से देखो कि यह रीढ़ की हड्डी में से
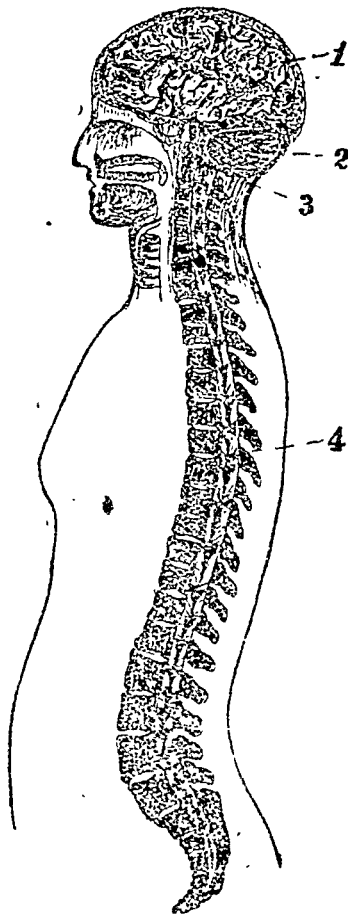
आकृति १६

१ (1) बड़ा मस्तिष्क— २ (2) छोटा मस्तिष्क—३ (3) रीढ़ की नस की जड़—४ (4) रीढ़ की नस ।

किस प्रकार होकर गया है । हम जानते हैं कि रीढ़ में २६ हड्डियाँ एक दूसरे के ऊपर क्रमशः रक्खी हैं । इन हड्डियों में से प्रत्येक के बीच में एक छिद्र होता है । यह हड्डियाँ एक दूसरे के ऊपर इस प्रकार रक्खी हुई हैं कि इन के छिद्रों से एक लम्बी लगातार नाली खोपड़ी के पेंदे से धड़ के नीचे तक बन गई है ।

रीढ़ की हड्डी के इसी मार्ग में से होकर रीढ़ की नस खोपड़ी के पेंदे से कमर तक चली जाती है ।

मस्तिष्क की भाँति रीढ़ की नस भी इसी भूरे और सफ़ेद रंग के गूदे से बनी हुई है, किन्तु इस में सफ़ेद गूदा बाहर की ओर और भूरा भीतर की ओर होता है । रीढ़ की नस लग भग १८ इंच लम्बी और छोटी उँगली के बराबर मोटी होती है ।

रीढ़ की नस का ऊपर का भाग जो खोपड़ी के भीतर और बड़े मस्तिष्क के ठीक नीचे स्थित है **रीढ़ की नस की जड़** कहलाता है । यह लग भग डेढ़ इंच लम्बा और पौन इंच व्यास का होता है । रीढ़ की नस की जड़ के पास से तथा मस्तिष्क और स्वयं रीढ़ की नस से लम्बे लम्बे सफ़ेद रंग के बड़े पुष्ट तागे से निकल कर शरीर के प्रत्येक भाग में फैल जाते हैं । यही तागे **स्नायु** कहलाते हैं (आकृति २० , २१) ।

मस्तिष्क से और रीढ़ की नस की जड़ से स्नायु के १२ जोड़े निकल कर आँखों, कानों, नाक, मुँह तथा चिहरे के बाहर की पेशियों तक पहुँचते हैं (आकृति २०) । रीढ़ की नस

से दोनों ओर स्नायु के ३१ जोड़ निकल कर धड़ के भिन्न भिन्न भागों और सम्पूर्ण अंगों में फैले हुए हैं (आकृति २१)।

रीढ़ की हड्डियों के बीच में जो छोटे छोटे मार्ग हैं उन के द्वारा यह स्नायु रीढ़ की नस से बाहर निकलते हैं। इन स्नायुओं में से प्रत्येक **रीढ़ की नली** से निकलने के पश्चात् अति सूक्ष्म शाखाओं में विभाजित होता चला जाता है। यह भाग विभाग अंत में ऐसे सूक्ष्म हो जाते हैं कि आँख से नहीं दिखाई देते। इन शाखाओं में से कुछ तो शरीर के मांस और पेशियों के
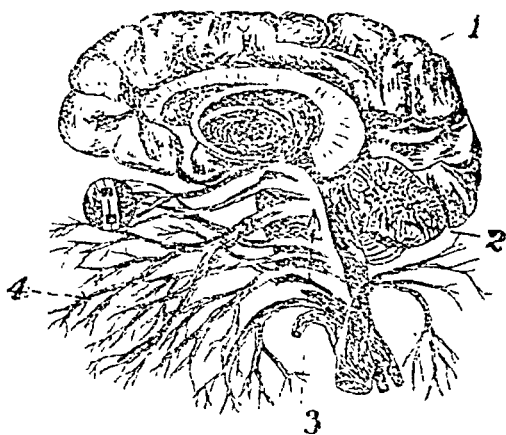
आकृति २०—मस्तिष्क और रीढ़ की नस की जड़
१ (1) बड़ा मस्तिष्क—२ (2) छोटा मस्तिष्क—३ (3) रीढ़ की नस की जड़—४ (4) स्नायु।
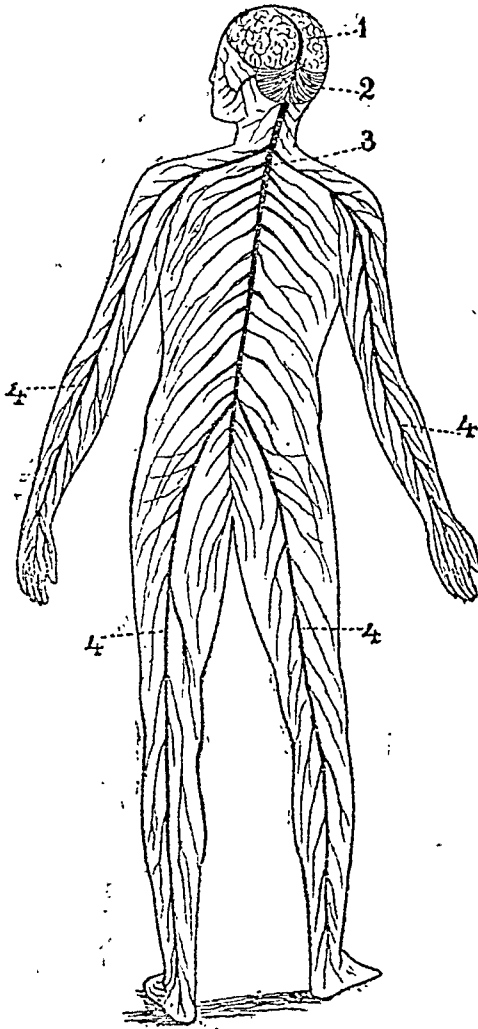
आकृति २१

१ (1) बड़ा मस्तिक—२ (2) छोटा मस्तिक—२ (3) रीढ़ की नस —३ (4) रीढ़ की नस से निकली हुई स्नायु।

प्रत्येक भाग में होकर शेष खाल के नीचे सम्पूर्ण धरातल पर फैल जाते हैं।

यह स्नायु उन बिजली के तारों के सदृश हैं जो तुम बड़े बड़े शहरों में और रेल की सड़क के किनारे खम्भों पर तने हुए देखते हो। पेशी में या खाल के नीचे जहाँ कहीं इन तारों में से कोई समाप्त होता है वह स्थान छोटे तार-घर के सदृश और मस्तिष्क बड़े तार-घर के सदृश है। मस्तिष्क से शरीर के प्रत्येक भाग में स्नायु के द्वारा इसी प्रकार समाचार जाता है जिस प्रकार ज़िले की राजधानी के तार घर से तहसीलों इत्यादि के छोटे तार-घरों में तार जाते हैं।

कुछ स्नायु ऐसे हैं जो बाहर की वस्तुओं के समाचार लेकर मस्तिष्क तक पहुँचाते रहते हैं। इन्हीं स्नायुओं की सहायता से हम देखते, सुनते, स्वाद लेते तथा छूते हैं। बाल और नखों को छोड़ कर यह स्नायु शरीर के प्रायः प्रत्येक भाग में पाये जाते हैं और यही कारण है कि हम को बाल काटते तथा नख काटते समय कुछ भी क्लेश नहीं होता। यदि शरीर के और किसी भाग में सुई चुभा दी जाय तो उस भाग के स्नायु तुरन्त मस्तिष्क को समाचार पहुँचा देते हैं और मस्तिष्क को जैसे ही यह समाचार मिलता है वैसे ही उस भाग में हम को पीड़ा जान पड़ती है। जब कोई ध्वनि हमारे कानों में पहुँचती है तो कानों के स्नायु उस को तुरन्त मस्तिष्क में ले जाते हैं और फिर हम को वह शब्द सुनाई देता है।

यदि हमारे शरीर के किसी भाग के स्नायु कट जायें अथवा वह किसी प्रकार से निकम्मे हो जावें तो हमको वहिर्भूत पदार्थों का ज्ञान नहीं होगा। जैसे यदि वह स्नायु जो मस्तिष्क को आँखों से मिलाते हैं कट जावें अथवा चोट खा जावें तो हम को कुछ नहीं दिखाई देगा अर्थात् हम अन्धे हो जावेंगे यद्यपि हमारी आँखें और मस्तिष्क वैसे के वैसे ही नीरोग हों।

अन्य स्नायु जो कि शरीर की पेशियों में हो कर फैले हुए हैं मस्तिष्क से आज्ञा पाकर शरीर के भिन्न भिन्न भागों में पहुँचा देते हैं। इन के द्वारा हम अपनी इच्छा के अनुसार अपने शरीर के भिन्न भिन्न भागों को हिला जुला सकते हैं। जब हम शरीर के किसी विशेष भाग को हिलाना जुलाना चाहते हैं तो मस्तिष्क स्नायु के द्वारा तुरन्त उस भाग की पेशी को सिकुड़ने और उस भाग के हिलाने की आज्ञा भेज देता है।

यदि शरीर के किसी भाग के यह स्नायु किसी प्रकार चोट खा जावें तो उस भाग के हिलने जुलने की शक्ति जाती रहती है अर्थात् वह गतिहीन तथा ज्ञानहीन हो जाता है। शरीर के जिन भागों को हम अपनी इच्छा के अनुसार हिला जुला सकते हैं वह इन्हीं स्नायुओं के अधिकार में हैं।

परन्तु हमारे शरीर में ऐसे भी स्नायु हैं जो शरीर के उन भागों को गतियुक्त करते हैं, जिनको गतियुक्त करना हमारे अधिकार से बाहर है जैसे दिल की और साँस लेने की पेशियाँ तथा पाकाशय और आँतों की पेशियाँ। यह जीवन पर्य्यन्त रात

दिन इन भागों से मस्तिष्क के पास समाचार ले जाया करते हैं और यहीं से उन अङ्गों के पास आज्ञा लाते रहते हैं यद्यपि उन समाचारों और आज्ञाओं का हम को कुछ भी ज्ञान नहीं होता ।

अब तक जो कुछ वर्णन किया गया है उस से विदित हो गया होगा कि मस्तिष्क सम्पूर्ण शरीर का राजा है अर्थात् शरीर के सारे कार्य्य मस्तिष्क की आज्ञानुसार होते हैं चाहे वह काम हमारे अधिकार में हो या न हो । यह भी स्पष्टतः विदित हो गया होगा कि हम मस्तिष्क के द्वारा ही देखते, सुनते, स्वाद लेते तथा सूँघते हैं ।

इसके अतिरिक्त मस्तिष्क हमारे लिए और भी बहुत सी बातों में सहायक है :—

मस्तिष्क के ही द्वारा हम सोचते, सीखते, स्मरण रखते, राग और द्वेष करते तथा डरते हैं अर्थात् मस्तिष्क ही से हम को मनीषा तथा स्मरण-शक्तियाँ मिली हैं तथा दुख सुख का ज्ञान होता है । सारांश यह है कि मस्तिष्क सम्पूर्ण शरीर का राजा है और सब अङ्ग इत्यादि उसकी प्रजा हैं ।

हम पहिले बता आये हैं कि मस्तिष्क के तीन भाग होते हैं अर्थात् बड़ा मस्तिष्क, छोटा मस्तिष्क और रीढ़ की नस की जड़ । यह भाग भिन्न भिन्न काम करते हैं जैसे बड़ा मस्तिष्क आत्मिक शक्तियाँ अर्थात् स्मरण, इच्छा और भावग्राहक इत्यादि देता है और इच्छा शक्ति के द्वारा हम को चलने फिरने इत्यादि की

शक्तियाँ देता है। यदि यह भाग किसी प्रकार से चोट खा जाय तो स्मरण, भावन और इच्छा शक्तियाँ सब निकम्मी हो जावें। ऐसे मनुष्य की स्मरण-शक्ति जाती रहती है। वह भोजन केवल उस समय करेगा जब उस के मुँह में डाल दिया जाय, वह अपनी इच्छा से कोई कार्य्य नहीं सम्पादन कर सकता क्योंकि उस में इच्छित काम करने की शक्ति कुछ नहीं रहती। जब कोई मनुष्य किसी मद से उन्मत्त होता है या उसके कोई बड़ी चोट मस्तिष्क में लग जाती है जो बड़े मस्तिष्क पर प्रभाव डाले तो यह भाग किसी काम का नहीं रह जाता।

छोटा मस्तिष्क हम को खड़ा होने, दौड़ने तथा बोलने की शक्तियाँ देता है। ऐसे कामों में बहुत सी पेशियाँ एक ही साथ में परस्पर मिल कर काम करती हैं। जब किसी मनुष्य के मस्तिष्क का यह भाग किसी प्रकार बहुत चोट खा जाता है तो वह अपनी इच्छानुसार चलने, फिरने, खड़े होने तथा बोलने इत्यादि के योग्य नहीं रहता। यदि चित्त लिटा दिया जाय तो फिर खड़ा नहीं हो सकता चाहे वह कितना ही खड़ा होने का उद्योग करे। वह केवल भद्दे ढंग से अपने अङ्गों को हिलाता है। यदि वह अपने पाँवों पर खड़ा भी कर दिया जाता है तो लड़खड़ाने लगता है और स्वयं सीधा रहने के उद्योग के पश्चात् गिर पड़ता है।

रीढ़ की नस की जड़ उन कार्य्यों को सम्पादन करती है जो जीवन के लिए आवश्यक हैं और जन्म से मरण तक रात दिन

होते रहते हैं और हमारे अधिकार में नहीं हैं जैसे दिल, पाकाशय, आँत तथा साँस की पेशियों की गति। इसके ऊपर का भाग जो बड़े मस्तिष्क के ठीक नीचे स्थित है हम को देखने, सूंघने, सुनने, स्वाद लेने और छूने की शक्तियाँ देता है। यदि मस्तिष्क का यह भाग चोट खा जाय तो रोगी को इन्द्रिय-बल कुछ भी न रहेगा और वह कोई काम अपनी इच्छा के अनुसार नहीं कर सकेगा। कारण यह है कि इस के बिगड़ जाने से बड़े मस्तिष्क और शरीर के शेष भागों का सम्बन्ध टूट जाता है। यदि गर्दन में बहुत चोट लग जाय और इससे रीढ़ की नस की जड़ का नीचे का भाग निकम्मा हो जाय तो दिल तथा साँस लेने की पेशियाँ अपना काम बन्द कर देती हैं और ऐसा रोगी तुरन्त मर जाता है।

रीढ़ की नस शरीर के भिन्न भिन्न भागों से मस्तिष्क में समाचार पहुँचाती रहती है और इस के अतिरिक्त मस्तिष्क की आज्ञाओं को भी उन पेशियों तक पहुँचाती रहती है जो हमारी इच्छा के अनुसार हिल जुल सकती हैं। यदि अकस्मात् गिरने के कारण रीढ़ की नस को चोट लग जाती है तो उस चोट खाये हुए स्थान से नीचे के शरीर के भाग और मस्तिष्क का परस्पर सम्बन्ध टूट जाता है और यह सम्पूर्ण भाग निकम्मे हो जाते हैं।

मस्तिष्क तथा स्नायु के उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि मस्तिष्क ही अपने स्नायुओं के द्वारा प्रत्येक प्रकार के बुद्ध्यात्मक

और शारीरिक कार्य्य की योग्यता तथा शक्ति प्रदान करता है। इससे हम यह अनुमान करते हैं कि मस्तिष्क को पुष्ट तथा नीरोग रखना अति आवश्यक है। इस लिए मस्तिष्क को शुद्ध रुधिर के पर्याप्त परिमाण की आवश्यकता है कारण यह है कि रुधिर ही सम्पूर्ण शरीर का पालन-पोषण करता है। और शुद्ध रुधिर स्वच्छ वायु तथा पुष्ट भोजन पर निर्भर है, अतएव हम को इन दोनों वस्तुओं के प्राप्त करने की चेष्टा करते रहना चाहिये।

मस्तिष्क को भी पेशियों की भाँति अपनी उन्नति के हेतु व्यायाम की आवश्यकता है। बुद्ध्यात्मक शक्तियों के अभ्यास से यह शक्तियाँ उन्नति करती हैं और इन का सुधार हो जाता है, किन्तु स्मरण रहे कि इन से लगातार बहुत काम लेना उचित नहीं; इन को भी विश्राम की आवश्यकता होती है। इस पुस्तक के दूसरे भाग में हम इस विषय का सविस्तर वर्णन करेंगे।

सातवाँ अध्याय

आँख और कान की बनावट

पिछले अध्याय में हम बता चुके हैं कि हम उन स्नायुओं के द्वारा जो आँखों और कानों को मस्तिष्क से मिलाते हैं, देख और सुन सकते हैं।

अब आँखों और कानों की बनावट के विषय में हम यह और बताते हैं कि उन के ऊपर बहिर्भूत पदार्थों का प्रभाव किस प्रकार पड़ता है और वह उन प्रभावों को अपने विशेष स्नायुओं के द्वारा किस प्रकार मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं।

आंख की बनावट— दोनों आँखें नाक के दोनों ओर के एक एक गढ़े में जो खोपड़ी तथा चिहरे की हड्डियों से बना हुआ है रक्खी हुई हैं। आँख का आकार ऐसी गेंद के सदृश है जो सामने की ओर कुछ उभरी हुई हो (आकृति २२)। आँख के गोले का अधिकतर भाग थोड़े से भाग को छोड़ कर जो आँख की पुतली के ऊपर सामने की ओर स्थित है, एक मोटी, अपारदर्शक, सफ़ेद झिल्ली से ढका हुआ है। आँख के इसी सफ़ेद पर्द का एक भाग पुतली के दोनों ओर हमारी दृष्टि

के सामने है। पुतली के ऊपर उभरा हुआ भाग एक मोटी पारदर्शक गोल झिल्ली से ढका हुआ है, जिस में से हम इस प्रकार देखते हैं जैसे शीशे में से देखते हैं। इसी पारदर्शक गोल झिल्ली के द्वारा आँख में प्रकाश आता है और इसी लिए इस को आँख की खिड़की कह सकते हैं।
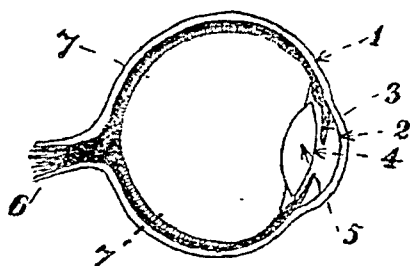
आकृति २२— आँख

१ (1) गाढ़ी अपारदर्शक सफ़ेद झिल्ली—२ (2) गाढ़ी पारदर्शक। गोल झिल्ली या आँख की खिड़की—३ (3) आँख की खिड़की के पीछे का गोल पर्दा जो रंगीन घेरे के सदृश दिखाई देता है —४ (4) आँख की पुतली—५ (5) आँख का शीशा—६ (6) नेत्र स्नायु—७ (7) आँख का पर्दा।

आँख की इस खिड़की के पीछे एक गोल पर्दा है जिस के मध्य में एक गोल छिद्र है। यह वही पर्दा है जो मध्य के छिद्र के चारों ओर एक रंगे हुये वृत्त के सदृश दिखाई देता है। इसी मध्य के छिद्र को आँख की पुतली कहते हैं। पुतली सदैव काले रंग की दिखाई देती है। किन्तु इस के काले होने का क्या कारण है? इस का यह कारण है कि आँख के गोले के भीतर

काले रंग की पतली सी झिल्ली का अस्तर लगा हुआ है और इसी भीतरी काले पर्दे का एक भाग आँख के पीछे की ओर रंगे हुये गोल पर्दे के मध्य के छिद्र के द्वारा दिखाई देता है। यह विचार ठीक नहीं है कि काला बिन्दु आँख के गोले के सामने के भाग पर है।

आकृति २३—आँख का शीशा।

इस गोल पर्दे के पीछे एक छोटी सी पारदर्शक वस्तु है जो सामने तथा पीछे की ओर कुछ गोल है और बीच में अधिक मोटी तथा किनारों पर पतली है। वह कुछ कुछ आतिशी शीशे के सदृश है जिस को यदि एक विशेष दूरी पर सूर्य्य के सामने किसी वस्तु पर रक्खा जाय तो वह वस्तु जलने लगती है। यही कारण है कि यह पारदर्शक गोल वस्तु आँख का शीशा कहलाती है।

इस से आँख का गोला दो ख़ानों में विभाजित हो जाता है एक सामने की ओर दूसरा पीछे की ओर। सामने की ओर का ख़ाना पीछे के ख़ाने से बहुत छोटा है और इस में एक पारदर्शक और जल के सदृश बहने वाला तत्त्व भरा रहता है और पीछे की ओर का ख़ाना एक गाढी पारदर्शक वस्तु से भरा रहता है जो कुछ कुछ अंडे की सफ़ेदी के सदृश होता है। इस के ठीक पीछे एक छोटा सा छिद्र दिखाई देता है जिस में से होकर

नेत्र स्नायु मस्तिष्क से निकल कर आँख के गोले में आता है। यहाँ पहुँच कर यह स्नायु बहुत से छोटे छोटे स्नायुओं में विभाजित होकर आँख के गोले के पीछे की ओर के धरातल पर फैल जाता है।

आँख के भिन्न भिन्न भागों का कुछ वर्णन करने के पश्चात् अब हम उन भागों के प्रयोग तथा लाभ पर कुछ बातें बतायेंगे।

यदि कोई एक छोटा आतिशी शीशा जो मध्य में मोटा होता है (आकृति २३) सूर्य्य के सामने रक्खें और उस के पीछे सफ़ेद काग़ज़ का एक टुकड़ा ले जायँ तो सूर्य्य का एक छोटा सा चमकीला सफ़ेद चित्र काग़ज़ पर शीशे से कुछ अन्तर पर दृष्टिगोचर होगा। फिर इस आतिशी शीशे को सूर्य्य के सामने रखने के बदले किसी और दूर की वस्तु, जैसे वृक्ष या घर के सामने रक्खें और सफ़ेद काग़ज़ के टुकड़े को शीशे के दूसरी ओर ले जायँ तो उस वृक्ष या घर का एक छोटा सा किन्तु उलटा चित्र उस काग़ज़ पर जब कि वह शीशे से एक विशेष दूरी पर रक्खा जाय, दिखाई देगा। नापने से ज्ञात होगा कि यह अन्तर सदैव एक ही सा रहता है, चाहे हम अपने आतिशी शीशे को सूर्य्य के लिए अथवा और किसी दूर की वस्तु के लिए प्रयोग करें।

आतिशी शीशे के विषय में हम ने जो कुछ निरीक्षण तथा प्रयोग किया है उस से तुम्हारे चित्त में यह बात बैठ गई होगी कि आँख में शीशे का प्रयोग तथा लाभ क्या है।

किसी बहिर्भूत पदार्थ का प्रकाश आँख की पुतली में से ठीक इसी प्रकार जाता है जिस प्रकार कि आतिशी शीशे से जाता है । सारांश यह है कि प्रकाश, गाढ़ी पारदर्शक जल के सदृश वस्तु से होकर और आँख के गोले के पीछे की ओर के चड़े ख़ाने से चल कर उस दृष्टिगोचर पदार्थ का चित्र अंत में आँख के गोले के पृष्ट पर बना देता है । यह ठीक उसी प्रकार होता है जैसा कि ऊपर के प्रयोग में सफ़ेद काग़ज़ पर चित्र बना था । आँख के गोले का पृष्ट उस सफ़ेद काग़ज़ के पर्दे का काम देता है जो आतिशी शीशे के साथ प्रयोग किया गया था । आँख के गोले के भीतरी काले पर्दे पर जैसे ही चित्र बनता है वैसे ही वह सूक्ष्म स्नायु जो आँख के पर्दे पर अधिकता से फैले हुए हैं मस्तिष्क को समाचार पहुँचा देते हैं और हम तुरन्त ही उस वस्तु को देख लेते हैं । यद्यपि वस्तुओं के चित्र जिन को हम देख सकते हैं हमारे आँख के भीतरी भाग पर उलटे पड़ते हैं तो भी हम मस्तिष्क और स्नायु की सहायता से उन को सीधा ही देखते हैं ।

यदि आँख के भिन्न भिन्न भाग सब ठीक ठीक हों किन्तु यह स्नायु किसी कारण से बिगड़ जायें तो बाहरी वस्तुओं के चित्र आँख के गोले के पृष्ठ पर बनते रहेंगे किन्तु हम उन को देख नहीं सकेंगे ।

काली पुतली के चारों ओर जो हलके रंग का गोल पर्दा है वह किस काम में आता है ? यह पर्दा पुतली को आवश्यकता-

नुसार छोटी अथवा बड़ी करने के लिए सिकोड़ता या फैलाता है। यह सब काम बहुत सी छोटी छोटी पेशियों के द्वारा होता है जो उस में लगी हुई हैं।
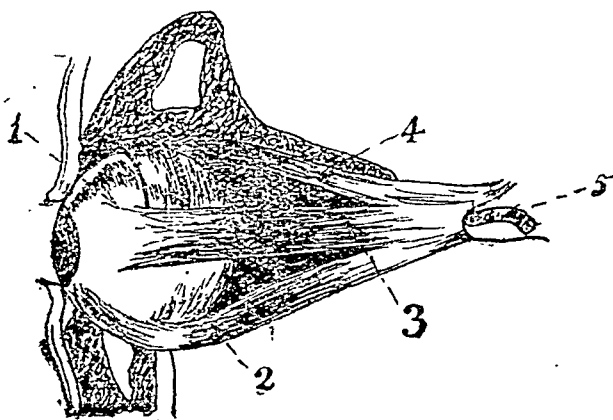
आकृति २४—आँख की पेशियाँ

१ (1) आँख—२ (2), ३ (3) ४ (4) आँख की पेशियाँ ५ (5) नेत्र स्नायु।

जब धूप तीव्र होती है तो पुतली इस पर्दे के सिकुड़ जाने से छोटी हो जाती है, यदि ऐसा न हो तो अधिक प्रकाश के भीतर जाने से आँख को हानि पहुँचने का भय है। यही कारण है कि जब हम तीव्र धूप से चल कर किसी अँधेरे कमरे में जाते हैं तो हम को वहाँ कुछ भी नहीं दिखाई देता है। जिस समय हम कमरे में पहुँचते हैं हमारी पुतलियाँ सिकुड़ी हुई होती हैं किन्तु कुछ समय के पश्चात् पर्दा क्रमशः फैलने लगता है और पुतलियाँ बड़ी होती जाती हैं और अधिक प्रकाश आँख में आने लगता है

और फिर हम कमरे की वस्तुओं को भली भाँति देख सकते हैं। बिल्ली की आँखों में हमने वहुधा पुतली को इस प्रकार सिकुड़ते तथा फैलते देखा है। धूप में बिल्ली की आँख की पुतली ऐसी छोटी हो जाती है कि केवल एक रेखा सी हो जाती है किन्तु अँधेरे फैल कर वृत्ताकार हो जाती है।

यदि आकृति २४ को ध्यान से देखो तो तुम को विदित होगा कि आँख के पृष्ठ से कुछ पेशियाँ निकलती हैं जो आँख के गोले के सामने के भाग से नसों के द्वारा मिली हुई हैं। इन्हीं पेशियों के द्वारा हम अपनी आँखों को प्रत्येक ओर फेर सकते हैं।

हम भली भाँति जानते हैं कि हमारी आँखें कैसी कोमल हैं तथा हमारे जीवन के लिए कैसी आवश्यक हैं, यही कारण है कि परमात्मा ने इनकी रक्षा के लिए हड्डियों के पुष्ट गढ़े इनके रखने के लिए वना दिये हैं। यही नहीं किन्तु इनकी रक्षा के हेतु और भी वहुत सी वातें की गई हैं जैसे जब सूर्य्य का प्रकाश अधिक तीव्र होता है तो पलकें उसे रोक देती हैं और धूल मिट्टी तथा मक्खियाँ और कीड़ों पतिंगों से आँख की रक्षा करती हैं। हमारी भौंहें भी व्यर्थ नहीं। यह माथे के पसीने को जो वह कर आँख में जाता है रोक देती हैं। हमको भी चाहिए कि अपनी आँखों की जो अति कोमल और आवश्यक हैं भली भाँति रक्षा करें। इस विपय को हम इस पुस्तक के दूसरे भाग में और भी विस्तार से वर्णन करेंगे।

कान की बनावट—अब हम कान के विषय में कुछ वर्णन करेंगे और यह बतलायेंगे कि कान शब्दों के सुनने में हम को किस प्रकार सहायता देते हैं।

कान खोपड़ी के दोनों ओर एक एक हड्डी में स्थित हैं। हम सब कान के बाहरी भाग से जो पंखे के सदृश हैं विज्ञ हैं। इसके मध्य में एक छिद्र है जो भीतर की ओर लगभग १ इंच तक चला गया है। यह मार्ग अंत में एक पतली किन्तु पुष्ट झिल्ली से भली भाँति मढ़ा हुआ है। इस झिल्ली को कान की झिल्ली कह सकते हैं (आकृति २५)। यह झिल्ली कुछ कुछ ढोल की खाल के सदृश है किन्तु इतनी पतली तथा कोमल है कि यदि कान पर कोई बड़ी चोट लग जाय अथवा कोई वस्तु इसमें ठूँस दी जाय तो इसके फट जाने का भय है। और यदि यह फट जाय तो फिर यह कभी जुड़ तथा सुधर नहीं सकती और मनुष्य सदैव के लिए बहरा हो जाता है।

इस झिल्ली के पीछे तीन छोटी छोटी हड्डियाँ एक दूसरी से मिली हुई हैं (आकृति २५)। इनमें से पहिली हड्डी झिल्ली के मध्य भाग से मिली हुई है और तीसरी हड्डी एक और छोटी सी झिल्ली से जो कान के और भी भीतर को है मिली रहती है। यह छोटी झिल्ली एक छिद्र को ढके रहती है जिसका मुँह बहुत सी टेढ़ी मेढ़ी हड्डियों की नलियों की ओर होता है। यह नलियाँ कुछ कुछ वृत्ताकार होती हैं (आकृति २५) और इन में एक तत्त्व पानी के सदृश भरा रहता है।

आकृति २५
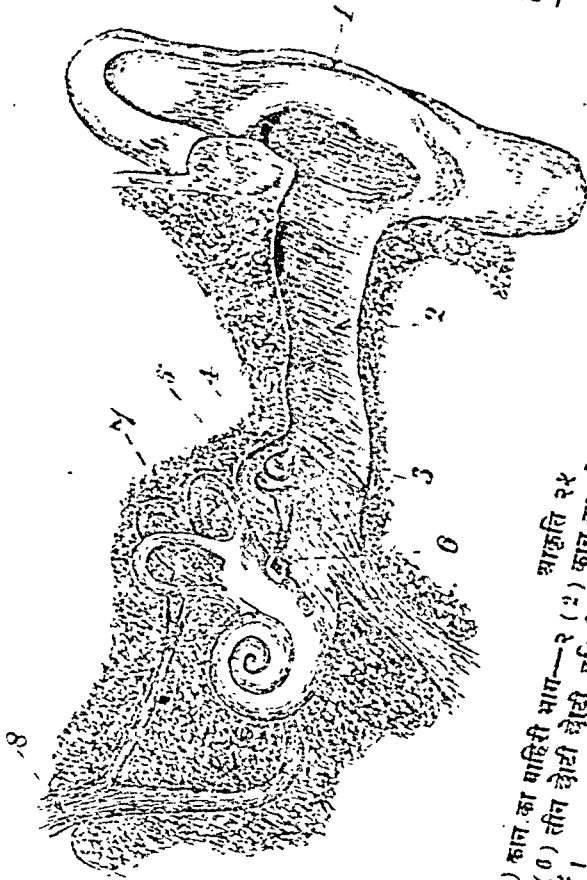
१ (1) कान का बाहिरी भाग—२ (2) कान का छेद—३ (3) कान की झिल्ली—४ (4) ५ (5) ६ (6) तीन छोटी छोटी हड्डियाँ ७ (7) पेचदार हड्डी—८ (8) कान का स्नायु और उसकी शाखायें।

वह स्नायु जिस से शब्द सुनाई देता है मस्तिष्क से निकल कर एक मार्ग से जो खोपड़ी की हड्डियों में होता है चल कर कान के सब से भीतरी भाग में आता है और यहाँ आकर बहुत सी सूक्ष्म शाखाओं में विभाजित हो जाता है। यह शाखायें हड्डियों की नलियों की भीतरी दीवारों पर फैल जाती हैं।

कान के इन भागों के प्रयोग के बताने से पूर्व हमको इस बात पर पूर्ण ध्यान देना उचित है कि शब्द हमारे कानों तक किस प्रकार पहुँचता है। यह तुम जानते हो कि किसी घंटी अथवा पाठशाला के घंटे को बिना बजाये स्वयं कोई शब्द नहीं निकल सकता अर्थात् जिस समय हम बजाते हैं उसी समय शब्द निकलता है। यदि जिस समय शब्द निकल रहा हो और हम उस वस्तु को जिससे शब्द निकल रहा है छुयें तो हमारी उँगली के सिरे पर एक **थरथराहट** सी ज्ञात होगी और जब यह थरथराना बन्द हो जायगा तो शब्द भी बन्द हो जायगा। यही दशा शब्द देने वाली सब वस्तुओं की होती है। यदि बोलते समय अपने गले को हम छुयें तो हम को भीतर की ओर कोई वस्तु थरथराती हुई जान पड़ेगी।

जब कभी किसी शब्द देने वाली वस्तु की थरथराहट से इस प्रकार का शब्द उत्पन्न होता है तो वह वस्तु अपने निकट की वायु को धक्का देती है और यह वायु अपने पास की वायु से टकराती है और इसी प्रकार क्रमशः टकराती चली जाती है। अंत में उस वायु को धक्का लगता है जो दोनों कानों के समीप है।

जब किसी शब्द वाली वस्तु से कोई शब्द हमारे कानों तक पहुँचता है उस समय वायु में जो घटना होती है उसके समझाने के लिए हम एक प्रयोग करते हैं। यदि कुछ पुस्तकें पास पास एक पंक्ति में मेज़ पर खड़ी कर दी जावें जैसा कि आकृति २६ में दिखलाया गया है और फिर इस पंक्ति के एक सिरे की पुस्तक को धीरे से छूकर गिरा दें तो वह गिरते समय अपने निकट की पुस्तक से टकरा कर उसे गिरा देगी और वह दूसरी अपने समीप वाली पुस्तक को और इसी प्रकार एक पुस्तक दूसरी पुस्तक से टकरा जायगी अन्त में अन्तिम पुस्तक गिर कर मेज़ से टक्कर खायगी। वायु की भी लगभग यही दशा होती है।
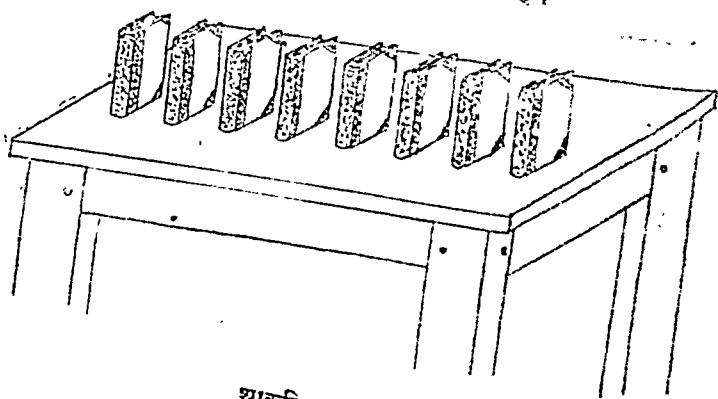
आकृति २६

जब कान के निकट की वायु को धक्का लगता है तो वह तुरन्त कान की भीतरी झिल्ली से टकराती है और इस धक्के से झिल्ली

में थरथराहट उत्पन्न होती है जिस के कारण छोटी छोटी हड्डियों की श्रेणी थरथराने लगती है और इस से उस दूसरी झिल्ली में भी जो कान के भीतर एक टेढ़े मेढ़े छिद्र के ऊपर मढ़ी हुई है थरथराहट उत्पन्न हो जाती है जिस से हड्डी वाले भागों के भीतर जो तत्त्व पानी के सदृश होता है थरथराने लगता है और सुनने के स्नायु की पाँच छोटी छोटी शाखायें जो उस तत्त्व पर तैरती रहती हैं इस थरथराहट के ज्ञान को अपने स्नायु के द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचा देती हैं जिस से हम को शब्द का ज्ञान हो जाता है अर्थात् हम सुनते हैं।

यदि सुनने के स्नायु की शाखायें किसी कारण से बिगड़ जायें तो वह उन टेढ़े मेढ़े मार्ग के भीतर के जल के सदृश तत्त्व की थरथराहट को न जान सकेंगी। परिणाम यह होगा कि उस का प्रभाव तथा ज्ञान मस्तिष्क तक नहीं पहुँचा सकेंगी और जिस मनुष्य के कान की यह दशा हो वह बहरा हो जायगा चाहे देखने में उसके कान में कोई दोष न जान पड़ता हो।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट विदित होता है कि कान एक अति कोमल अंग है और परमात्मा ने इसी कारण से इसकी बहुत रक्षा की है और इस के भिन्न भिन्न भागों को खोपड़ी के भीतर हड्डियों में रक्खा है जिस से वह सुरक्षित रहें। इस पुस्तक के दूसरे भाग में हम इस विषय में और विस्तार से बतायेंगे।

दूसरा भाग

विद्यार्थियों का स्वास्थ्य

पहिला अध्याय

पाठशाला में प्रकाश तथा वायु का यथोचित प्रबंध

प्रकाश—पाठशाला के कमरों में बहुत से लड़कों को इकट्ठे बैठ कर काम करना होता है इसलिये उनमें साधारण रहने के कमरों की अपेक्षा बहुत प्रकाश की आवश्यकता होती है। यदि कमरे में प्रकाश कम होता है तो लड़कों की आँखों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इनके सिर में दर्द होने लगता है और दृष्टि को भी हानि पहुँचती है। परन्तु कमरे में यथोचित प्रकाश रखने के लिये सूर्य्य का प्रकाश एक दम भीतर लाना भी बड़ी भूल है क्योंकि इससे भी लड़कों की आँखों को हानि पहुँचती है। वास्तव में आवश्यकता इस बात की है कि जहाँ तक सम्भव हो कमरे में प्रकाश एक सा हो और न बहुत अधिक हो और न बहुत कम हो।

पढ़ाने के कमरे में पर्याप्त प्रकाश पहुँचने के लिए बहुत सी खिड़कियाँ रखनी चाहिए। यदि दरवाज़ों और खिड़कियों के क्षेत्रफलों का योग कमरे के क्षेत्रफल का छठा भाग हो तो अत्युत्तम है। परन्तु यदि कोई पाठशाला चारों ओर अन्य घरों से घिरी हुई हो अर्थात् उसके चारों ओर खुला मैदान न हो तो उसके कमरों के लिए और भी अधिक खिड़कियों की आवश्यकता होगी।

यदि किसी कमरे की खिड़कियाँ बहुत नीची और उसके धरातल के समीप हों और यद्यपि उपर्युक्त नियम से क्षेत्रफल ठीक भी हो तो भी उस कमरे में पर्याप्त प्रकाश नहीं पहुँचेगा। खिड़की की चौकठ का निचला भाग कमरे के धरातल से इतना ऊँचा होना चाहिए कि सब से नीचे के भाग से आने वाला प्रकाश भी भीतर बैठे हुए लड़कों की आँखों के बराबर न हो। जिस कमरे की उँचाई लगभग १४ फ़ीट हो उसमें धरातल से साढ़े तीन अथवा चार फ़ीट की ऊँचाई पर खिड़कियाँ लगाने में सुगमता होगी। प्रत्येक खिड़की कम से कम ५ फ़ीट लम्बी तथा ३ फ़ीट चौड़ी होनी चाहिये।

किसी कमरे के दरवाज़ों और खिड़कियों की गिनती का निर्णय करने के पश्चात् यह देखना चाहिए कि इनको किस क्रम से और कहाँ कहाँ लगाया जाय। इसमें अधिकतर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि खिड़कियाँ ऐसे स्थान पर लगें कि उनमें से प्रकाश आते समय किसी प्रकार लड़कों की आँखों को हानि न पहुँचाये।

हो तो उसकी दीवारों पर कोई ऐसा हलका रङ्ग कराना चाहिए जिसे देर तक देखने से आँखों को कष्ट न हो जैसे हलका पीला रङ्ग।

स्वच्छ वायु—इस पुस्तक के पहिले भाग के चौथे अध्याय में हम बता चुके हैं कि हम प्रत्येक मिनट में लगभग सत्तरह बार साँस लेते हैं और हम यह भी देख चुके हैं कि प्रत्येक साँस में हम अपने फेफड़ों से कुछ अशुद्ध वायु बाहर निकालते हैं और यह अशुद्ध वायु हमारे शरीर में से कुछ मैल अपने साथ बाहर लाती है। अतएव प्रत्येक बार साँस लेने में हम अपने निकट की शुद्ध वायु को काम में लाते हैं और उस को अशुद्ध वायु और बहुत से अन्य मैलों से जो हमारे शरीर के भीतर से निकलते रहते हैं मैला बनाते रहते हैं।

यदि हम किसी कमरे में जाकर उस के सब दरवाज़े तथा खिड़कियाँ बन्द कर लें तो उस की सम्पूर्ण शुद्ध वायु क्रमशः व्यय होकर उसके बदले में अशुद्ध वायु उत्पन्न हो जायगी और साँस के द्वारा फेफड़ों में जाने लगेगी। परिणाम यह होगा कि वह मैला रुधिर जो शरीर के भिन्न भिन्न भागों का मैल अपने साथ फेफड़ों में लाया था कि वहाँ शुद्ध हो जायगा अब शुद्ध नहीं हो सकेगा और इस प्रकार मैला रुधिर हमारे शरीर में संचार करता रहेगा और शरीर के भिन्न भिन्न भागों का पालन पोषण शुद्ध रुधिर से न हो सकेगा और न उन के निकम्मे अंश बाहर निकल सकेंगे। इस सब का परिणाम यह होगा कि सिर में दर्द हो

जायगा और शारीरिक तथा मानसिक आलस्य उत्पन्न हो जायँगे ।

उपर्य्युक्त कारणों को देख कर हम यह अनुमान करते हैं कि कमरे के भीतर की अशुद्ध वायु को उत्पन्न होते ही बाहर निकाल देना चाहिए, वह कमरे में कदापि ठहरने न पाये ।

अब तुम समझ सकते हो कि पाठशाला के उस कमरे की वायु जिसमें तीस लड़के और एक अध्यापक हो कैसी अशुद्ध हो जाती होगी । यदि यह अशुद्ध वायु लगातार निकलती न रहे तो लड़कों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डालेगी । बालकों के सिर में पीड़ा होने लगेगी और वह आलस्य से अंगड़ाई लेने लगेंगे और मानसिक क़ामों के करने के योग्य न रहेंगे ।

मैली और अशुद्ध वायु जो हम अपने फेफड़ों से बाहर निकालते हैं हमारी सन्निकट की शुद्ध वायु की अपेक्षा गर्म और हलकी होती है इसलिए अंगीठी की गर्म वायु तथा धुयें की भाँति छत की ओर ऊपर को उठती है और यदि छत के समीप कोई खिड़की या छेद हो तो उस के मार्ग से बाहर निकल जाती है इस लिए यह अति आवश्यक है कि छत के समीप कोई खिड़की या छिद्र रक्खा जाय । जो खिड़कियाँ प्रकाश के लिये रक्खी जाती हैं यदि वह ऐसी ऊँचाई पर लगाई जायँ कि उन के ऊपर के सिरे छत के समीप हों तो उन से भी अशुद्ध वायु बाहर जा सकती है । यदि ऐसा करना असम्भव हो तो छत के समीप कोई छोटी सी खिड़की या छेद होने चाहिएं ।

पाठशाला में प्रकाश तथा वायु।

कमरे से अशुद्ध वायु निकालने के उद्योग के साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बाहर से स्वच्छ और शुद्ध वायु आती रहे। इस के लिए दरवाज़े सदैव खुले रखना चाहिए।

इस से यह सिद्धान्त निकला कि अध्यापक को मैली वायु को कमरे से निकालने का प्रबन्ध कर देना चाहिए और उस के बदले में स्वच्छ और शुद्ध वायु कमरे के भीतर आती रहे अर्थात् उसका कर्तव्य यह है कि सब खिड़कियाँ और दरवाज़े तथा छेद वायु के लिए खुले रक्खें।

इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि वायु जो दरवाज़ों में से कमरे के भीतर आई है वह शीघ्र ही खिड़कियों के मार्ग से न निकल जाय। इस शुद्ध वायु को कमरे में धीरे धीरे फैलने का अवसर दिया जाय जिस से प्रत्येक विद्यार्थी तक यह पहुँच सके; क्योंकि सम्भव है कि जो लड़के वायु के मार्ग से दूर हैं उन को स्वच्छ वायु न मिले और खिड़कियों के मार्ग से निकल जाय। इस के अतिरिक्त यह भय है कि ऐसी शीघ्रता से वायु कमरे के भीतर जाय और जो लड़के दरवाज़े के समीप बैठे हों वह विशेष कर वर्षा और जाड़े की ऋतु में सर्दी खा जायँ।

कमरे के सम्पूर्ण दरवाज़े और खिड़कियाँ खुली रहने पर भी यह विचार न करना चाहिए कि कमरे के धरातल पर जहाँ जहाँ स्थान शेष है हम वहाँ लड़के बैठा सकते हैं। प्रत्येक लड़का

१ मिनट में लग भग ५० घन फ़ीट वायु को मैला कर देता है, इसके लिए कम से कम १५ वर्ग फ़ीट स्थान होना चाहिए। यदि हम किसी कमरे की लम्बाई तथा चौड़ाई नाप कर उस का क्षेत्र फल ज्ञात करलें अथवा ऊँचाई नाप कर उस का घनफल जानलें तो हम सुगमता से बता सकते हैं कि इस में कितने लड़कों को बैठाना चाहिए।

दूसरा अध्याय

व्यायाम

हम जानते हैं कि हमारी प्रत्येक गति और प्रत्येक बात तथा प्रत्येक काम से जो हम करते हैं हमारे अङ्गों के कुछ न कुछ अंश लगातार व्यय होते रहते हैं यहाँ तक कि जब हम विचार करने तथा पुस्तकावलोकन करने के लिए किसी स्थान पर चुपचाप बैठे रहते हैं तो भी हमारा मस्तिष्क काम करता रहता है और उसके अंश व्यय होते रहते हैं। अतएव जब किसी लड़के से पाठशाला में अथवा घर पर किसी प्रकार का मानसिक काम लिया जाता है तो उस के शरीर और विशेष कर मस्तिष्क में सदैव बहुत से निकम्मे अंश उत्पन्न हो जाते हैं और जो रुधिर धमनियों के द्वारा मस्तिष्क में फिरता रहता है इन अंशों को ले लेता है और अन्त में यह निकम्मे अंश अशुद्ध वायु के रूप में बदल कर फेफड़ों के मार्ग से बाहर निकल जाते हैं।

विश्राम की अपेक्षा मानसिक काम में निकम्मे अंश अधिक उत्पन्न होते हैं और अशुद्ध वायु के रूप में इसी प्रकार बाहर निकलते रहते हैं जैसे कि विश्राम की दशा में निकलते थे। इस

लिए मानसिक काम के समय में जितनी शीघ्रता से निकम्मे अंश उत्पन्न होते हैं उतनी शीघ्रता से अशुद्ध वायु में परिवर्त्तित होकर निकलते नहीं । परिणाम यह होता है कि शरीर में निकम्मे अंश अधिक एकत्रित होते जाते हैं और रुधिर में मिल कर उस को धीरे धीरे मैला तथा निकम्मा बनाते रहते हैं । इस से शरीर के भिन्न भिन्न अंग क्रमशः बलहीन हो जाते हैं और अपने काम को करने के योग्य नहीं रह जाते । कारण यह है कि इन अङ्गों के पुष्ट करने के लिए शुद्ध रुधिर पर्याप्त परिमाण में नहीं पहुँचता । इस का फल यह होता है कि विद्यार्थी की छाती बलहीन हो जाती है । पेशियाँ नर्म तथा पिलपिली पड़ जाती हैं, भूक नहीं लगती और दिल तथा फेफड़े भी निर्बल हो जाते हैं और वह मनुष्य किसी मानसिक अथवा शारीरिक काम के देर तक करने के योग्य नहीं रहता और धीरे धीरे मानसिक और शारीरिक निर्बलता में ग्रसित हो जाता है । इस लिए इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि निकम्मे अंश लड़कों के शरीर में बहुत देर तक रहने न पावें ।

जो निकम्मे अंश मानसिक काम के समय में शरीर के भीतर इकट्ठे हो जाते हैं उन को उचित व्यायाम के द्वारा शरीर के बाहर निकाल सकते हैं ।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि व्यायाम से भी तो शरीर में निकम्मे अंश उत्पन्न होते हैं, किन्तु इस से जितने उत्पन्न होते हैं उस से अधिक निकल जाते हैं । व्यायाम से पसीना अधिक

आता है और बहुत से निकम्मे अंश इस के साथ शरीर से निकल जाते हैं। साँस भी जल्दी जल्दी और बड़ी बड़ी लेनी पड़ती है इस से निकृष्ट वायु का बहुत सा भाग निकल जाता है।

इस प्रकार व्यायाम के द्वारा हम केवल उन निकम्मे अंशों को ही नहीं निकाल देते जो इस से उत्पन्न होते हैं वरन इस के पूर्व जितने निकम्मे अंश मानसिक काम के समय एकत्रित हो गये थे वह भी निकल जाते हैं।

व्यायाम के समय जब साँस परिमाण से अधिक गहरी लेनी पड़ती है और जल्दी जल्दी लेनी पड़ती है, तो केवल निकृष्ट वायु ही अधिक परिमाण में फेफड़ों से नहीं निकलती वरन शुद्ध वायु भी उनमें पहिले से कहीं अधिक परिमाण में आने लगती है और इस प्रकार रुधिर शीघ्रता से शुद्ध होने लगता है। रुधिर का सञ्चार शीघ्रता से होने लगता है जिस का फल यह होता है कि भिन्न भिन्न अङ्गों की पुष्टि तथा पालन-पोषण के लिए स्वच्छ रुधिर अधिक परिमाण में पहुँचना आरम्भ हो जाता है, जिससे शरीर के नष्ट हुए अंशों की कमी शीघ्रता से पूर्ण हो जाती है, और वह अधिक पुष्ट होकर अपने काम को भली भाँति करने के योग्य बन जाते हैं। इस प्रकार दिल, छाती और शरीर के अन्य भागों की पेशियाँ अधिक पुष्ट हो जाती हैं। मानसिक शक्तियों में बल आ जाता है, भूख तथा पाचन-शक्ति बढ़ जाती है। सारांश यह है कि नित्य के व्यायाम से शरीर तथा मस्तिष्क दोनों की शक्तियाँ पुष्ट और बलवान हो जाती हैं।

प्रत्येक भाँति के मानसिक काम तुम जानते ही हो कि बड़े मस्तिष्क के द्वारा होते हैं और व्यायाम तथा अन्य शारीरिक कार्य्य छोटे मस्तिष्क के आश्रय से पूर्ण होते हैं। इसलिए यदि कोई बालक किसी खेल अथवा व्यायाम में सम्मिलित होता है तो इस से उसके बड़े मस्तिष्क को जो घर और पाठशाला में बराबर परिश्रम करने से थक जाता है कुछ विश्राम मिलता है।

पाठशालाओं में व्यायाम किसी न किसी रूप में अवश्य होना चाहिए। व्यायाम कई भाँति के होते हैं जैसे भिन्न भिन्न प्रकार के खेल, दौड़, ड्रिल, कुश्ती तथा डंड बैठक। परन्तु हमारी पाठशालाओं के लिए ड्रिल और भिन्न भिन्न प्रकार के खेल, दौड़ना और कूदना इत्यादि अधिक उचित हैं।

इस अवसर पर ड्रिल का अधिक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि इस विषय पर शिक्षा-विभाग ने पाठशालाओं के लिए एक छोटी सी किन्तु लाभदायक पुस्तक नियत कर दी है जिसमें वह सम्पूर्ण व्यायाम जो लड़कों के लिए आवश्यक हैं लिखे हुए हैं और उनके सिखाने की विधि भी दी हुई है।

अब हम उन भिन्न भिन्न प्रकार के खेलों का वर्णन करेंगे जो लड़कों के लिए अति लाभदायक हैं किन्तु इनमें से कुछ पर अधिक धन व्यय होता है और कदाचित् इस कारण से वर्नाक्यूलर स्कूलों के लिए उचित नहीं है। परन्तु **फ़ुट-बाल** पर और खेलों की अपेक्षा अधिक धन व्यय नहीं होता, इस लिए यह बड़े वर्नाक्यूलर स्कूलों के लिए उचित

में और शुद्ध और स्वच्छ वायु में होना चाहिए। केवल इसी दशा में लड़कों को व्यायाम से लाभ पहुँच सकता है। यदि वायु अशुद्ध तथा मैली होगी अथवा धूल तथा मिट्टी से भरी होगी तो मिट्टी के छोटे छोटे कण और अनेक प्रकार के मैल उनके फेफड़ों में पहुँचेंगे जिससे उनका रुधिर स्वच्छ होने के बदले मैला हो जायगा और उन को पुष्ट करने के बदले रोगी बना देगा। अतएव ऐसी वायु का प्रभाव उन के शरीर तथा मस्तिष्क दोनों पर बहुत बुरा होगा।

तीसरा अध्याय

आँख तथा कान की रक्षा

प्रत्येक अध्यापक को यह जानना चाहिए कि अपने विद्यार्थियों की आंखों तथा कानों की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए। हम पहिले बता चुके हैं कि दूर की वस्तुओं की छाया आँख के भीतरी परदे पर आँख के शीशे के द्वारा ठीक उसी प्रकार पड़ती है जिस प्रकार आतिशी शीशे के द्वारा सफ़ेद काग़ज़ पर पड़ती है। यदि किसी समीप की वस्तु की छाया आतिशी शीशे के द्वारा सफ़ेद काग़ज़ पर डाली जाय तो वह उस स्थान पर नहीं पड़ेगी जहां पर कि दूर की वस्तु की छाया पड़ती है। इसलिए यदि हम चाहें कि उस की छाया पर्दे पर स्पष्ट पड़े तो पर्दे को शीशे से कुछ दूर पीछे हटाना चाहिए और यदि पर्दा अपने स्थान पर ही रक्खा रहे तो पहले रक्खे हुए शीशे के द्वारा छाया स्पष्ट नहीं पड़ेगी। उस दशा में हम यह कर सकते हैं कि उस शीशे को हटा कर उसके स्थान में उससे मोटा शीशा रख कर देखें कि उसके द्वारा पर्दे पर छाया स्पष्ट पड़ती है या नहीं; यदि नहीं पड़ती तो उसे भी हटा कर और मोटा शीशा लगावें, यहाँ तक कि और भी अधिक मोटाई वाले कई शीशों से एक दूसरे के बाद अन्दाज़ करते करते कोई

न कोई शीशा ऐसा निकल आवेगा कि जिसके द्वारा पर्दे पर छाया स्पष्ट पड़ेगी। यदि वस्तु और भी निकट लाई जाय तो और भी मोटे शीशे के प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ेगी। यह सब बातें भली भाँति उस समय समझ में आ जायेंगी जब अध्यापक वैज्ञानिक रीति से उन का प्रयोग करके समझायेगा।

अब हम यह ज्ञात करेंगे कि जिस समय हम किसी पास की वस्तु की ओर देखते हैं तो हमारी आँखों पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस दशा में छाया आँख के पर्दे के पीछे पड़ती है और पर्दा चूं कि आंख के शीशे से दूर पीछे की ओर नहीं हटाया जा सकता इसी लिए आँख के शीशे की मुटाई बढ़ जाती है और निकट की वस्तु की छाया आँख के पर्दे पर पड़ जाती है। वस्तु जितनी पास अधिक होगी उतनी ही उस शीशे की मुटाई अधिक होगी। यदि हम फिर किसी दूर की वस्तु को देखें तो शीशा पतला होकर अपनी वास्तविक मुटाई पर आ जाता है।

आँख के शीशे की मुटाई में यह परिवर्तन आँख की बहुत सी सूक्ष्म भीतरी पेशियों के द्वारा होता है। प्रत्येक बार जब शीशा अपनी मुटाई बदलता है तो इन पेशियों और आँख के शीशे पर एक प्रकार का बोझ पड़ता है। यदि किसी लड़के को काग़ज़ या पुस्तक अपनी आँखों के बहुत समीप रख कर अधिक समय तक लिखना या पढ़ना पड़े तो उसकी आँखों के शीशों तथा उन पेशियों पर जो इन से सम्बन्ध रखती हैं और

पर्दे से मिली हुई हैं अधिक बोझ पड़ेगा और कोई आश्चर्य नहीं कि इससे उसके सिर तथा आँखों में पीड़ा होने लगे।

लड़कों को कागज़, स्लेट अथवा पुस्तक इत्यादि को बहुत ही निकट रख कर कुछ समय तक काम करना एक और प्रकार से भी हानिकारक है। जब कोई वस्तु आँख के अत्यन्त समीप रख कर देखी जाती है तो केवल आंख का शीशा ही मोटा नहीं हो जाता वरन दोनों आँखें भी एक दूसरे की ओर खिंच जाती हैं। यह काम उन पेशियों के द्वारा होता है जो आँख के बाहरी सफेद पर्दे से जुड़ी हुई होती हैं। इनका वर्णन हम पहिले भाग के सातवें अध्याय में कर चुके हैं। जिस समय यह दोनों आँखें खिंचती हैं तो यह बाहर का सफेद पर्दा भी इन पेशियों के द्वारा तन जाता है। यह सफेद पर्दा जो युवकों की आँखों में कड़ा होता है, बच्चों की आँखों में अत्यन्त कोमल और नर्म होता है।

यदि बचपन में पास की वस्तुओं को लगातार देर तक देखने से इस कोमल और नर्म पर्दा पर अधिक खिचाव पड़ता रहे तो आंख लम्बी सी हो जाती है और आँख का शीशा और उस के पीछे के पर्दे का अन्तर बढ़ जाता है। इस दशा में दूर की वस्तुओं की स्पष्ट छाया इस पर्दे पर बनने के बदले सामने की ओर उसके और आँख के पर्दे के मध्य में कहीं पर बन जाती है। जो छाया इस दशा में पर्दे पर पड़ती है वह स्पष्ट नहीं होती और इसलिए दूर की वस्तु स्पष्ट नहीं दिखाई देती। ऐसी आँखों से केवल दूर की वस्तुयें सदा धुंधली दिखाई देती हैं।

इन्हीं उपर्य्युक्त कारणों से परमावश्यक है कि दस ग्यारह वर्ष की आयु तक बच्चे काग़ज़, स्लेट या पुस्तक इत्यादि आँखों के अति समीप रख कर लिखने पढ़ने से अपनी आँखों को नष्ट न करें।

जितना ही शीघ्र बच्चे इस प्रकार समीप से लिखने पढ़ने का कार्य आरम्भ करते हैं उतना ही उनकी आँखों को अधिक हानि पहुँचने का भय रहता है।

उचित है कि लिखने पढ़ने के पाठ जिनमें आँखों को समीप रखने की आवश्यकता पड़ती है बड़े न हों। विद्यार्थियों को चाहिए कि लिखते पढ़ते समय सदैव पुस्तक को आँखों से कम से कम एक फुट की दूरी पर रक्खें।

पढ़ाई के कमरे सदैव भली भाँति प्रकाशित होने चाहिएं जिस से लड़कों को अपनी पुस्तकें आँखों के बहुत समीप लाने की आवश्यकता न पड़े और उचित दूरी से पढ़ सकें। परन्तु इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि प्रकाश कदापि लड़कों के सामने से न आये क्योंकि इस से उनकी आँखों में चकाचौंध होने लगेगा। अध्यापक को उचित है कि लड़कों को इस प्रकार बिठाये कि अधिकतर प्रकाश उनकी बाईं ओर से आये जिस प्रकार कि पहिले बता दिया गया है। इस के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि छोटे लड़कों के पढ़ने की पुस्तकें बड़े बड़े अक्षरों में छपी हों और भिन्न भिन्न अक्षर भली भाँति पृथक् पृथक् हों। काग़ज़ का रंग सफ़ेद और अक्षरों का काला होना चाहिए क्योंकि और सब रंग आँखों के लिये हानिकारक हैं। लड़कों को

भी उचित है कि लिखते समय सफ़ेद काग़ज़ और काली स्याही का प्रयोग करें और लाल तथा नीले रङ्ग का प्रयोग कदापि न करें।

इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे लिखना सीखने के प्रारम्भ में बहुत छोटे छोटे अक्षर न लिखें।

अध्यापक को भी चाहिए कि श्याम पट पर लिखते समय सुन्दर और ऐसे बड़े बड़े अक्षरों में लिखे कि जो लड़के कमरे में सब से पिछली पंक्ति में बैठे हों वह भी सुगमता से पढ़ सकें।

जब भूगोल पढ़ाते समय नक़शे का प्रयोग किया जाय उस समय भी अध्यापक को देख लेना चाहिए कि नक़शे पर वे बातें जिनकी आवश्यकता नहीं है छोटे अक्षरों में न छापी गई हों, केवल वही बातें होनी चाहिएं जो लड़कों के लिए आवश्यक हैं।

यदि इतनी सावधानी रखने पर भी किसी लड़के की आँख बल-हीन हो तो उसके घर वालों को शीघ्र ही इसकी सूचना देनी चाहिए, जिससे वे उसकी औषध के लिए किसी अस्पताल में अथवा किसी वैद्य के पास ले जायँ।

अतः अध्यापक को ऐसे लड़कों का पता अवश्य लगाना चाहिए जिनकी दृष्टि बल-हीन हो क्योंकि यदि कोई बुराई हो तो औषध द्वारा दूर कर दी जाये।

दृष्टि की निर्बलता की बहुत सी पहिचानें स्पष्टतः विदित हैं। श्याम पट पर लिखे हुए शब्द या दीवार पर लटकाये हुए नक़शे स्पष्ट दिखाई नहीं देते और उनको स्पष्ट रूप से देखने का उद्योग

करने में आँखें कुछ बन्द हो जाती हैं और भौंहें सिमिट कर एक दूसरे से आ मिलती हैं। कुछ देर तक लिखने पढ़ने में सिर में पीड़ा और आँखों में जलन उत्पन्न हो जाती है और प्रायः आँखें लाल होकर फूल जाती हैं।

हर एक अध्यापक को अपने शिष्यों के कानों की रक्षा करना भी उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार कि आँखों की। कान भी बहुत ही कोमल अङ्ग हैं और उनमें कोई चोट पहुँच जाने से सदैव के लिए बहरे हो जाने का भय रहता है।

लड़कों के कान खींचना या कानों पर मारना प्रत्येक दशा में अनुचित है क्योंकि सम्भव है कि कान के पर्दे के पीछे वाली छोटी छोटी हड्डियों के क्रम को ऐसी चोट पहुँच जाय जिससे श्रवण शक्ति कुछ या पूर्णतया नष्ट हो जाये।

इसके अतिरिक्त और भी ऐसे कारण हैं जिनसे श्रवण-शक्ति को हानि पहुँचती है। अतः सम्भव है कि प्रत्येक कक्षा में कुछ लड़के ऐसे हों जो किसी न किसी कारण से कम सुनते हों। ऐसे विद्यार्थी तीव्र बुद्धि वाले और चतुर भी हों तो भी अध्यापक उनके न सुनाई देने के दोष से अनभिज्ञ होने के कारण उनको मन्दबुद्धि वाला तथा बे परवाह समझ लेते हैं यद्यपि उन लड़कों की यह दशा उनके किसी अपराध के कारण से नहीं वरन् उन कारणों से है जिनका उन पर कुछ अधिकार नहीं है। इस लिये कम सुनने के कारणों को कुछ जानना प्रत्येक अध्यापक के लिए अत्यावश्यक है जिससे वह यह ज्ञात कर सके कि लड़का

वास्तव में मन्द बुद्धि वाला है या केवल कम सुनने के दोष से ऐसा ज्ञात पड़ता है।

प्रायः बाहिरी नली में अधिक मैल के एकत्र हो जाने के कारण सुनाई देना बन्द हो जाता है क्योंकि ऐसी दशा में कोई शब्द कान के पर्दे तक नहीं पहुँचता। कान का मैल प्रायः नखों और कलम इत्यादि अथवा और किसी नोकीली वस्तु द्वारा निकालते हैं, परन्तु विद्यार्थियों को यह बात भली भांति समझा देनी चाहिए कि वे किसी दशा में डाक्टर के अतिरिक्त किसी और मनुष्य को अपने कानों में कोई नोकीली वस्तु न डालने दें क्योंकि सम्भव है कि इससे कान का पर्दा फट जाय जो फिर कदापि ठीक नहीं हो सकता।

कानों का मैल निकालने और बहरेपन को दूर करने के लिये सब से उत्तम रीति यह है कि रात को मीठे तेल के थोड़े से बूंद कान में डाल दें और रात भर कान में रुई का फाहा लगाये रहें, तत्पश्चात् पिचकारी द्वारा गर्म पानी से धोवें तो मैल स्वयं निकल जायगा।

जब किसी अध्यापक को यह ज्ञात हो जाय कि उसके शिष्यों में से किसी के कान से पीब बहती है तो उसको शीघ्र ही लड़कों के माता-पिता को इस बात की सूचना देनी चाहिए, क्योंकि सम्भव है कि इससे बढ़ते बढ़ते मस्तिष्क में फोड़ा उत्पन्न हो जावे और वह प्राणघातक बन जाये।

———

चौथा अध्याय

मानसिक थकावट

इसके पूर्व बतलाया गया है कि प्रत्येक काम में चाहे वह शारीरिक हो अथवा मानसिक शरीर के कुछ अंश अवश्य व्यय होते रहते हैं। अतएव जब लड़कों को पाठशाला में चार पाँच घंटों तक नई नई बातें सीखने और समझने में लगातार उद्योग करना पड़ता है तो उनके शरीर और विशेष कर मस्तिष्क में बहुत सा निकम्मा अंश उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि निकम्मे भाग मस्तिष्क की धमनियों में बहने वाले रुधिर के द्वारा सदैव निकलते रहते हैं तो भी जैसा कि दूसरे अध्याय में वर्णन हो चुका है उत्पन्न होते ही नहीं निकल जाते और इसलिए शरीर में लगातार एकत्रित होते रहते और धीरे धीरे रुधिर को मैला और निकम्मा बनाते रहते हैं।

अब यह निकम्मा रुधिर न तो मस्तिष्क ही के और न शरीर ही के अन्य भागों से निकम्मे अंश को निकाल सकता है और न उनका उचित रीति से पालन पोषण कर सकता है। इसलिए मस्तिष्क धीरे धीरे बलहीन हो जाता है और इसके थक जाने से

निर्बलता तथा आलस्य विदित होने लगता है। एक ही समय में मस्तिष्क से अधिक काम लेना मानसिक थकावट का मुख्य कारण है।

जब रुधिर मैला और निकम्मा हो जाता है तो मस्तिष्क और मानसिक शक्तियों में निर्बलता उत्पन्न हो जाती है, अतएव जब पढ़ाई के कमरों से अशुद्ध वायु के निकलने और उसके बदले में स्वच्छ वायु के आने के लिए कोई मुख्य प्रबन्ध नहीं होता तो रुधिर स्वच्छ नहीं होता और इससे मस्तिष्क बलहीन हो जाता है और थकावट उत्पन्न हो जाती है।

इसी कारण से अच्छी तरह न सोने और व्यायाम के न करने से भी थकावट विदित होती है। यथोचित और बलवर्द्धक भोजन जो मस्तिष्क और शरीर के अन्य भागों के व्यय हुए अंश की पूर्ति करता है प्राप्त न होने के कारण मस्तिष्क में निर्बलता उत्पन्न हो जाती है।

भोजन करने के पश्चात् उचित विश्राम के न करने से भी प्रायः मस्तिष्क में थकावट उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि भोजन करने के पश्चात् मस्तिष्क को बहुत ही कम रुधिर प्राप्त होता है। भोजन करते ही पाकाशय और आँतों की गति भोजन को पचाने के लिए बहुत तीव्र हो जाती है, अतः इस गति से शरीर के इन भागों में निकम्मे अंश बहुत उत्पन्न हो जाते हैं। इस लिए उन निकम्मे अंशों को निकालने के लिए अधिक रुधिर की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि भोजन करने के पश्चात् मस्तिष्क को

पर्याप्त रुधिर नहीं मिलता, अतः यदि भोजन करते हों मस्तिष्क से अधिक काम लिया जाय तो न वह अपने निकम्मे अंश से स्वच्छ हो सकता है और न अपनी उन्नति के लिए पर्याप्त और स्वच्छ रुधिर प्राप्त कर सकता है। अतएव भोजन करने के पश्चात् आध घंटे तक मस्तिष्क से कुछ काम न लेना चाहिए।

जब लड़के थक जाते हैं तो ऐसी उत्तम रीति से काम नहीं कर सकते जिस प्रकार कि वह पहिले कर सकते थे। ऐसी दशा में वह न कोई अच्छे काम करने के योग्य होंगे और न पाठशाला के काम से कुछ लाभ उठा सकेंगे।

इस लिए पाठशाला का काम ऐसा होना चाहिए कि लड़कों का मस्तिष्क पूर्णतया थक न जाय। अतः थकावट की साधारण पहिचान के विषय में कुछ न कुछ जानना प्रत्येक अध्यापक के लिये अत्यन्त आवश्यक है जिससे वह थके हुए लड़कों से बहुत परिश्रम न करायें नहीं तो इसका परिणाम बहुत बुरा होगा।

बहुत सी ऐसी पहिचाने हैं जिनके द्वारा जानकार अध्यापक विदित कर सकता है कि लड़के वास्तव में काम से थक गये हैं या नहीं। जैसे जब कोई लड़का थक जाता है तो उसका सिर प्रायः सामने या एक ओर को झुक जाता है और एकही स्थान पर चुप चाप बैठने और जो कुछ हो रहा हो उस पर ध्यान देने के योग्य नहीं रहता। कक्षा में सोना या अगड़ाइयाँ लेना लड़कों की मानसिक थकावट की दो बड़ी पहिचाने हैं।

यदि अध्यापक इन पहिचानों पर कुछ ध्यान न दें तो

लड़कों के मस्तिष्क पर अधिक बोझ पड़ने से केवल उन के मस्तिष्क ही पर नहीं वरन् सम्पूर्ण शरीर पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। चूँकि रुधिर धीरे धीरे निकम्मे अंश को मस्तिष्क से लेकर निकम्मा हो जाता है और शरीर में सञ्चार करता हुआ निकम्मे अंश को शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचा देता है, इसलिए मस्तिष्क और शरीर के अन्य भाग निकम्मे अंश से न स्वच्छ हो सकते हैं और न उनके व्यय हुए अंश की पूर्ति के लिए उचित भोजन प्राप्त कर सकते हैं। परिणाम यह होता है कि मस्तिष्क और शरीर अपनी उन्नति से वञ्चित रह जाते हैं और विद्यार्थियों को केवल मानसिक निर्बलता ही नहीं होती वरन् बल भी घट जाता है। कारण यह है कि मानसिक निर्बलता की दशा में शारीरिक उन्नति होना तथा शारीरिक निर्बलता की दशा में मानसिक उन्नति करना दोनों असम्भव हैं।

विद्यार्थियों को मानसिक थकावट से बचाने के लिए अध्यापक को चाहिए कि पाठशाला के काम के घंटे इस क्रम से रक्खे कि बालकों को एकही समय में लगातार बहुत सा मानसिक काम न करना पड़े।

पाठ को ध्यानपूर्वक पढ़ने और चित्त को एकाग्र करके उस को याद करने का समय भिन्न भिन्न अवस्था के बालकों के लिए भिन्न भिन्न लम्बाई का होना चाहिए। दस बारह वर्ष तक के लड़के किसी पाठ पर एक ही समय में आध घंटे से अधिक

लगातार ध्यान नहीं दे सकते। किसी दशा में किसी पाठ का समय ४५ मिनट से अधिक नहीं रखना चाहिए।

इस के अतिरिक्त बालकों से पाठशाला में चार पाँच घंटों तक लगातार काम लेना भी बड़ा भूल है। बीच में कम से कम १५ मिनट की छुट्टी होनी चाहिए और इस छुट्टी में लड़के अपनी अपनी कक्षाओं के कमरों में न बैठे रहें वरन् बाहर खुले मैदान में जाकर खेलें कूदें। इससे उनकी थकावट तथा आलस्य दूर हो जायगा और वह पाठशाला के शेष समय में अपने पाठों पर भली भाँति ध्यान लगा सकेंगे।

पहिले घंटे और फिर छुट्टी के पश्चात् के घंटे में बालकों में मानसिक थकावट नहीं होती है अर्थात् वह चैतन्य रहते हैं। इसलिए गणित, भाषा इत्यादि जिन में अधिक ध्यान देने और सोचने की आवश्यकता होती है इन्हीं घंटों में जहाँ तक सम्भव हो पढ़ाना चाहिए। शेष घंटों में व्यायाम करना, लिखना तथा ड्राइंग इत्यादि सिखाना चाहिए। कारण यह है कि इन विषयों में अधिक मनन करने की आवश्यकता नहीं होती।

बालकों को बहुत समय तक एकही प्रकार के काम में लगाये रखना अनुचित है, जैसे गणित और भाषा के घंटों का एक दूसरे के पीछे होना अच्छा नहीं है। कारण यह है कि इन दोनों में अधिक ध्यान देने और विचारने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार इतिहास तथा भूगोल के घंटे जिन में स्मरण-शक्ति का अधिक काम पड़ता है अथवा लिखने और ड्राइंग के घंटे जिन में

अधिकतर हाथ से काम लिया जाता है लगातार आ जायँ तो बड़ी हानि होगी।

मानसिक थकावट से बचने के लिए उपर्युक्त यत्न करने पर भी लड़के चार पाँच घंटों तक पाठशाला में लगातार काम करने से थक जाते हैं। उन को फिर सचेत करने तथा फिर काम करने के लिए उद्यत करने के हेतु उन से व्यायाम कराना अति आवश्यक है। अतः सब लड़कों को किसी न किसी प्रकार के व्यायाम में सम्मिलित होना चाहिए जिस से थकावट दूर होकर वह सम्पूर्ण काम भली भाँति कर सकें जो उन के अध्यापकों ने घर पर करने के लिए दिया हो।

प्रत्येक अध्यापक का धर्म है कि बालकों को घर पर काम करने के लिए जो काम दे उस में उन की अवस्था तथा योग्यता का ध्यान रक्खे, अर्थात् उस काम को भली भाँति सोच विचार कर दे। छोटी कक्षा के लड़कों को घर पर काम करने के लिए कुछ न दे और बड़ी कक्षा के लड़कों को केवल दो घंटे का काम दे।

पाँचवाँ अध्याय

साधारण सङ्क्रामक रोग

हम पिछले अध्यायों में बता चुके हैं कि व्यायाम न करने से तथा सीमा से अधिक मानसिक काम लेने के कारण पाठ-शाला के विद्यार्थियों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

भिन्न भिन्न प्रकार के रोगों से भी उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचने का भय विशेष कर ऐसे रोगों से होता है जो फैलने वाले हैं।

इन सङ्क्रामक रोगों में से कुछ तो ऐसे हैं जो रोगियों को छूने से अथवा उनके वस्त्र के स्पर्श से फैल जाते हैं और शेष सब रोग वायु और खाने पीने की वस्तुओं के द्वारा लग जाते हैं। हमारे देश के साधारण सङ्क्रामक रोग ख़सरा, चेचक, शीतला, कूकर-खाँसी, प्लेग, हैज़ा, आँखों का सूजना, दाद तथा खुजली हैं।

जब इन फैलने वाले रोगों में से कोई रोग किसी पाठशाला के आस पास फैला हुआ जान पड़े अथवा पाठशाला के किसी लड़के पर यह शंका हो कि वह इस में ग्रसित हो गया है, तो

प्रत्येक अध्यापक का धर्म है कि वह ऐसे रोग को और वालकों में लग जाने से रोके ।

अध्यापक का केवल यही धर्म नहीं है कि वालकों की मानसिक शक्तियों की उन्नति करे, वरन यह भी है कि उनके शरीर तथा स्वास्थ्य का भी ध्यान रक्खे । इस के लिए उसको साधारण फैलने वाले रोगों के कारण तथा उनके चिह्न थोड़े वहुत जानना आवश्यक है जिससे वह इन रोगों को वालकों में फैलने से रोक सके ।

इन रोगों में से अधिकांश वहुत छोटे छोटे कीड़ों के द्वारा उत्पन्न होते हैं । यह कीड़े इतने छोटे होते हैं कि एक इंच लम्बी रेखा में लगभग दस सहस्र समा सकते हैं । यह कीड़े प्रायः वायु, भोजन, तथा जल में पाये जाते हैं और इसलिये साँस लेते और खाते पीते समय वह सुगमता से रुधिर में जा मिलते हैं । जव कोई लड़का किसी ऐसे गृह से आता है जिसमें कोई छूत का रोग है तो अवश्य वह कपड़ों तथा कितावों के साथ कुछ न कुछ ऐसे कीड़े पाठशाला में ले आता है । जव यह कीड़े कमरे में वायु के द्वारा फैल जाते हैं तो दूसरे लड़के साँस लेते समय उन में से कुछ न कुछ अपने फेफड़ों में ले लेते हैं । प्रायः इसी प्रकार कीड़े रुधिर में जा पहुँचते हैं ।

रुधिर में पहुँच जाने के पश्चात्‌ही वह वढ़ने लगते हैं । कुछ समय के पश्चात् उन कीड़ों में से प्रत्येक के दो कीड़े हो जाते हैं यहाँ तक कि एक दिन में रुधिर के केवल एक विन्दु में कई

सहस्र कीड़े हो जाते हैं। यह कीड़े प्रायः विषैले तत्त्व उत्पन्न कर देते हैं जो रुधिर में मिल जाने से धीरे धीरे शरीर के भिन्न भिन्न भागों में बुरा प्रभाव डालते तथा अनेक रोग उत्पन्न करते हैं। यही रोग बहुधा ऐसे कठिन हो जाते हैं कि मनुष्य के प्राण हर लेते हैं।

परन्तु किसी सङ्क्रामक रोग के कीड़ों के शरीर में प्रवेश करने के समय से उस के चिह्न के प्रकट होने तक कुछ समय बीत जाता है। यह समय भिन्न भिन्न रोगों के लिए पृथक् पृथक् होता है। इस समय कोई विशेष चिह्न उपस्थित नहीं होते, किन्तु सम्भव है कि मन मलीन रहे तथा चित्त में अशान्ति हो। ऐसी दशा में रोगी को छूने से उस का रोग किसी को नहीं लग सकता और वह अपने साथियों में वह रोग नहीं फैला सकता।

उपर्य्युक्त समय के बीत जाने पर रोगी में रोग के प्रायः सम्पूर्ण चिह्न स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं और इसी समय से वह रोग को फैलाने के योग्य हो जाता है। कक्षाओं में लड़के प्रायः एक दूसरे के समीप बैठते हैं इसीलिए वह साँस लेते समय उन कीड़ों को जो रोगी लड़के के शरीर, वस्त्र और पुस्तकों से कमरे की वायु में आकर उड़ते फिरते हैं अपने फेफड़ों में ले जाते हैं।

इसलिए प्रत्येक अध्यापक का धर्म है कि यथाशक्ति अपने बालकों में ऐसे रोगों को फैलने से रोके, किन्तु जब तक वह इन रोगों के कुछ प्रारम्भिक चिन्हों से विज्ञ न हो उस को रोकने में सफलता नहीं प्राप्त होगी।

खसरा—यह शीघ्रता से लगने वाला रोग है और एक प्रकार का ज्वर होता है जिस के साथ ही शरीर पर फुनसियाँ फूट निकलती हैं। यह रोग प्राय: छोटे बालकों को होता है। इस में जुकाम की भाँति सिर में पीड़ा तथा जाड़ा और छींक के साथ आरम्भ होता है। आँख तथा नाक से जल बहने लगता है। बहुधा कुछ कुछ खाँसी भी होती है तथा आँखें लाल हो जाती हैं तथा कंठ में खुजली सी जान पड़ती है। इन के पश्चात् तीसरे या चौथे दिन पहिले माथे तथा चिहरे पर छोटे छोटे गोल लाल दानों के सदृश फुनसियाँ फूट निकलती हैं। यह रोग फेफड़ों, कंठ और नाक से निकले हुए मैलों के द्वारा एक लड़के से दूसरे तक पहुँचता है।

चेचक—यह भी एक प्रकार का लगने वाला ज्वर होता है जिस के साथ ही फुनसियाँ निकल आती हैं। यह भी प्राय: लड़कों में होता है। इस के प्रारम्भिक चिह्न सिर तथा कमर में पीड़ा और जाड़ा तथा कै हैं। दो तीन दिन के पश्चात् पहिले चिहरे तथा माथे पर लाल दाने निकलते रहते हैं और फिर धड़ तथा दूसरे अङ्गों पर प्रकट होते हैं। यह दाने चार पाँच दिन के पश्चात् एक द्रव पदार्थ से भर जाते हैं, ततपश्चात् इन में पीप पड़ जाती है। इस के पश्चात वारह तेरह दिन व्यतीत होने पर सूखने लगते हैं और दालें सी बन कर धीरे धीरे गिर जाते हैं। साँस और इन दानों के द्वारा यह रोग एक से दूसरे को लग जाता है। कभी कभी यह साधारण रीति से होता है किन्तु बहुधा ऐसा

कठिन तथा कष्ट देने वाला होता है कि रोगी का प्राण हर लेता है।

शीतला—यह भी एक प्रकार का फुनसियोंवाला ज्वर होता है जो एक से दूसरे को लग जाता है। यह भी प्रायः वालकों ही में होता है, किन्तु चेचक से बहुत हलका होता है, मृत्यु इससे बहुत कम होती है। फुनसियों के फूट निकलने से पूर्व इस के कोई प्रारम्भिक चिह्न प्रकट नहीं होते किन्तु सम्भव है कि सिर की पीड़ा तथा प्यास के सहित हलका सा ज्वर हो। इन लक्षणों के लगभग २४ घंटे पश्चात् फुनसियाँ छोटे छोटे लाल दानों के रूप में पहिले चिहरे पर दिखाई देती हैं और फिर धीरे धीरे सम्पूर्ण शरीर में फैल जाती हैं।

प्रत्येक प्रकार के साधारण जुकाम तथा खाँसी को जिनके साथ कंठ की पीड़ा हो भयानक समझना चाहिए। कारण यह है कि इन पर ध्यान न देने तथा उचित प्रवंध न करने से कंठ तथा साँस की नाली और फेफड़ों से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह रोग प्रायः कंठ और नाक से निकले हुए मैल तथा साँस के द्वारा एक से दूसरे को लग जाते हैं। कूकर-खांसी एक साधारण सङ्क्रामक रोग है जो इस प्रकार लग जाता है और वालकों को कठिन पीड़ा देता है इस से खाँसते खाँसते अन्त में कै आ जाती है और रोगी शिथिल हो जाता है।

प्लेग—आजकल लगभग हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण भागों में बहुत ही साधारण सङ्क्रामक रोग है और इसके कारण प्रति वर्ष

बहुत से मनुष्य मर जाते हैं । सिर में विशेष पीड़ा होना, काँपना, हलका ज्वर, लाल आँखें तथा कै इसके प्रारम्भिक चिह्न हैं । बग़ल और गर्दन, तथा जाँघ में गिलटियों का उभड़ आना भी इस रोग की एक विशेष पहिचान है । साधारण रीति से रोगी इन चिह्नों के प्रकट होने के चार पाँच दिन पश्चात् मर जाता है । इस रोग के सङ्क्रामक कीड़े शीघ्र ही खाल अथवा फेफड़ों के रास्ते से शरीर में प्रवेश कर जाते हैं । यह रोग एक स्थान से दूसरे स्थान वायु या चूहों के द्वारा पहुँचता है और इसके अतिरिक्त प्लेग के रोगी तक के कपड़ों और खाने पीने की उन वस्तुओं के द्वारा भी फैलता है जिनको प्लेग वाले चूहों ने उनमें मिला दिया है ।

लगातार कै और दस्त **हैज़ा** के प्रारम्भिक चिह्न हैं । जो लड़का हैज़े में ग्रसित हो जाता है वह साधारण रीति से इस के प्रारम्भिक चिह्नों के प्रगट होने के समय से इतना निर्बल हो जाता है कि पाठशाला में उपस्थित नहीं हो सकता ।

आँख का सूजना—यह भी छोटे बच्चों का बहुत ही साधारण रोग है । इससे पलकों और आँख के मध्य की झिल्ली सूज जाती है । प्रारम्भ में आँख के सामने के भाग और पलकों में जो लाल तथा सूजे हुए विदित होते हैं पीड़ा जान पड़ती है । आँख से जल भी बहता है और रोगी प्रकाश को सहन नहीं कर सकता । यदि प्रारम्भ में इस पर ध्यान न दिया जाय तो जल गाढ़ा और पीला हो जाता है और रात को सोते समय शुष्क हो जाता है और प्रातःकाल तक पलकें परस्पर चिपट जाती हैं ।

इस रोग से आँखों को विशेष हानि पहुँच सकती है, क्योंकि सम्भव है कि आँख के भीतरी भागों में सूजन फैल जाय। यह रोग साधारण रीति से हाथ, कपड़े, रूमाल और तौलिया इत्यादि के आँखों से बही हुई वस्तु से छूने के द्वारा फैलता है, यह इतना शीघ्र फैलनेवाला रोग है कि थोड़े ही समय में एक लड़के से सम्पूर्ण कक्षा में फैल जाता है।

खाज और दाद—यद्यपि यह बहुत ही कष्टदायक हैं परन्तु जीवन के लिए कदापि भयानक नहीं हैं।

खाज—प्रायः उँगलियों के बीच घाइयों में या शरीर के ऐसे भागों में निकलती है जहाँ खाल कोमल तथा पतली होती है। पहिले पहल यह छोटी छोटी फुनसियों के रूप में होती है जो बहुत छोटे छोटे कीड़ों से उत्पन्न हो जाती है। यह कीड़े खाल के नीचे नीचे फैलते जाते हैं। इस रोग का साधारण चिह्न यह है कि इसमें खुजली सदैव होती रहती है। इस खाज से कभी कभी सूजन हो आती है और बड़े बड़े घाव भी हो जाते हैं।

दाद—यह एक छोटे से गोल वृत्त के रूप में प्रकट होता है। इसमें भी खुजली बहुत उठती है इसके वृत्त के चारों ओर छोटी छोटी फुनसियों की एक पंक्ति सी बन जाती है। धीरे धीरे यह वृत्त बढ़ता जाता है। यह रोग सिर तथा चिहरे अथवा शरीर के और किसी अन्य भाग में भी हो सकता है। यह भी एक प्रकार का सङ्क्रामक रोग है जो कीड़ों से उत्पन्न होता है। दाद के कीड़ों खाज के कीड़ों से भिन्न होते हैं। यह रोग शीघ्रता

से एक से दूसरे को लग जाता है और दाद को छूने तथा रोगी के पास की वायु को साँस के साथ लेने में तथा दाद वाले के वस्त्र को छूने अथवा पहिनने से भी उत्पन्न होता है।

इन सङ्क्रामक रोगों को पाठशाला के लड़कों में फैलने से रोकने के लिए भी आवश्यक यह है कि अध्यापक इन रोगों के प्रारम्भिक चिह्नों का ध्यान रक्खे, विशेष कर ऐसे समय में जब कि कोई रोग पाठशाला के सन्निकट किसी गाँव में फैल रहा हो। यदि कोई लड़का किसी सङ्क्रामक रोग से पीड़ित हो तो उस को तुरन्त घर भेज देना चाहिए और उसके माता-पिता को सूचना दे देनी चाहिए जिस से उसकी दवा इत्यादि कराई जाय।

यदि यह शङ्का हो कि कोई लड़का किसी ऐसे रोगी के पास गया अथवा रहा था जो सङ्क्रामक रोग से पीड़ित था तो यद्यपि उस रोग के चिह्न उस बालक में प्रकट न हों, तो भी जब तक उस रोग के कीड़ों के शरीर में प्रवेश करने और उस के पहिले चिह्न दृष्टिगोचर न हो जायँ तब तक उसको पाठशाला में आने और लड़कों से मिलने जुलने से रोकना आवश्यक है। यदि इस समय के बीत जाने पर बालक में उस रोग के चिह्न न प्रकट हों तो यह अनुमान किया जा सकता है कि उसमें उस रोग का कोई कीड़ा उपस्थित नहीं है। अतएव उस को फिर से पाठशाला में आने की आज्ञा देने में कोई भय नहीं है। यदि समय पर रोक थाम न की जाय तो सम्भव है कि पाठशाला के सब लड़कों में यह रोग फैल जाय।

रोग की आशङ्का के कारण किसी बालक को पाठशाला में आने तथा अन्य लड़कों से मिलने जुलने से रोकने का समय सब लगने वाले रोगों के लिए एक ही सदृश नहीं है। अतः इस समय में जो कि फैलनेवाले कीड़ों के शरीर में प्रवेश होने के पश्चात् प्रारम्भिक चिह्न प्रकट होने के लिए आवश्यक है तीन चार दिन अधिक होना चाहिये। जब किसी लड़के के विषय में यह सन्देह हो कि वह ख़सरे के किसी रोगी के पास गया या रहा है तो लगभग अठारह दिन तक उसे अलग रखना चाहिए। अलग रखने का समय चेचक के लिए चौदह दिन, सीतला के लिए अठारह दिन, प्लेग के लिए दस दिन और हैज़े के लिए पाँच दिन होना चाहिए। परन्तु यदि कोई लड़का आँख की सूज़न या दाद के रोगी के पास गया हो तो उसे बीमारी के चिह्न के प्रकट होने से पहिले अलग नहीं कर सकते, कारण यह है कि इन रोगों के चिह्न इनके कीड़ों के शरीर में प्रवेश होते ही प्रकट हो जाते हैं।

अध्यापकों को यह जानना भी बहुत आवश्यक है कि कब किसी लड़के को किसी सङ्क्रामक रोग से अच्छे होने पर फिर निस्सन्देह पाठशाला आने की आज्ञा दे सकते हैं, जिससे उसके द्वारा दूसरों को उस रोग से ग्रसित होने का सन्देह न रहे। किसी लड़के को ख़सरे से चङ्गा होने के पश्चात् उस समय तक पाठशाला में लौट न आना चाहिए जब तक कि उसकी खाँसी और नाक बहना बन्द न हो जाय और शरीर पर से लाल चिह्न

लुप्त न हो जायँ। चेचक और शीतला का रोगी चङ्गा होने पर प्रत्येक दाल गिर जाने और शरीर स्वच्छ हो जाने के लगभग दस दिन पश्चात् पाठशाला में फिर से पढ़ने आ सकता है। प्लेग से अच्छा होने पर कम से कम एक महीने पश्चात् फिर पढ़ने आना चाहिए। परन्तु हैज़े के रोग के पश्चात् केवल उस समय फिर से आना उचित है जब भली भाँति बलिष्ट हो जाय। यदि कोई लड़का आँख के सूजने, खाज या दाद से रोगी हो तो उसे पाठशाला में लौटने की आज्ञा न देना चाहिए जब तक कि वह रोग से भली भाँति चङ्गा न हो जाय।

इन सब प्रयत्नों के करने पर भी सम्भव है कि कोई लड़का किसी सङ्क्रामक रोग से अच्छे होने के पश्चात् भी अपने सहपाठियों से मिलने जुलने के कारण उन में रोग फैला देवे। जब तक रोग के सङ्क्रामक कीड़े जो उसके शरीर, वस्त्र, बिछौने, पुस्तकों तथा रहने के घर में हों पूर्णतया नष्ट न हो जायँ उसे अलग ही रहना चाहिए। उसके शरीर के सङ्क्रामक कीड़े साधारण कारबोलिक साबुन या सिरके से कुछ दिनों तक बार बार धोने से पूर्णतया मर जाते हैं। परन्तु जो कीड़े वस्त्रों और बिछौने और पुस्तकों में हों उनको नष्ट करने का अच्छा उपाय गर्मी और धूप है। वस्त्र और बिछौनों को खौलते हुये पानी में डाल सकते हैं और पुस्तकों को धूप में फैला सकते हैं। धूप उपर्युक्त रोगों के सङ्क्रामक कीड़ों को सब से अधिक नष्ट करने वाली वस्तु है। घर के भीतर के सङ्क्रामक कीड़े पुताई कराने और सब दरवाज़े

और खिड़कियाँ बन्द करके कमरों में गंधक जलाने से नष्ट हो सकते हैं। गंधक का धुआँ रोग के सङ्क्रामक कीड़ों को मार डालने के लिए बहुत ही उपयोगी होता है।

सङ्क्रामक रोगों को पाठशाला के लड़कों में फैलने से रोकने के लिए यह उचित होगा कि लड़कों को कमरे में थूकने से रोका जाय। बहुत से रोग ऐसे हैं जो थूक और नाक से निकले हुये बलग़म से फैलते हैं, इसलिए कमरे में थूकना अथवा नाक साफ़ करना बहुत ही भयानक है। सङ्क्रामक रोगी के शरीर से कीड़े बहुधा उस के थूक और कफ के साथ बाहर निकल आते हैं और जब यह दोनों सूख जाते हैं तो इन के कीड़े वायु में मिल कर इधर उधर उड़ा करते हैं और इस प्रकार अन्य लड़कों में रोग फैला देते हैं। अध्यापक का धर्म है कि बालकों को भली भाँति समझा दे कि वह कमरे में यदि थूकेंगे अथवा नाक साफ़ करेंगे तो उस से भयानक रोग उत्पन्न हो जायँगे।

जब कभी पाठशाला के निकट अथवा सन्निकट किसी गाँव में प्लेग या हैज़ा बहुत वेग से फैला हो तो अध्यापक को चाहिए कि बालकों तथा उनके माता-पिता को भली भाँति समझा दें कि ऐसी दशा में टीका लगवाना अति आवश्यक है, इससे ये रोग रुक जाते हैं। इसी प्रकार चेचक से बचने के हेतु भी टीका लगवाना चाहिए। टीका लगवाने से ये रोग या तो होते ही नहीं या यदि होते हैं तो उनसे मृत्यु का भय नहीं होता।

———

छठा अध्याय
साधारण घटनायें

सङ्क्रामक रोगों के अतिरिक्त बालकों पर ऐसी घटनायें भी हो जाती हैं जैसे कट जाना, छिल जाना, मोच आना, हड्डी का टूट जाना या अपने स्थान से खिसक जाना, जीव-जन्तुओं तथा कीड़ों का काटना और डसना इत्यादि। इसलिए प्रत्येक अध्यापक को थोड़ा बहुत यह भी जानना चाहिए कि वह ऐसी किसी घटना में किस प्रकार बालकों की सहायता कर सकता है। ऐसी दशा में वास्तव में किसी डाक्टर को बुलाना चाहिए कि वह इस दुख को दूर करे क्योंकि यह काम अध्यापक की अपेक्षा डाक्टर ही भली भाँति कर सकता है।

कुछ घटनायें ऐसी हैं जो विशेष पाठशाला के लड़कों में हो जाती हैं जैसे रुधिर का बहना, खरोंचे लगना, मोच आना, किसी हड्डी का अपने स्थान से खिसक जाना अथवा टूट जाना, जल जाना, डूबना, जीव-जन्तुओं तथा कीड़े-मकोड़ों का काटना और डंक मारना, किसी वस्तु का आँख, कान तथा नाक में घुस जाना।

जब किसी खरांच अथवा घाव से रुधिर धीरे धीरे निकलता हो तो उचित है कि किसी स्वच्छ कपड़े का टुकड़ा कुछ गर्म जल में भिगो कर उस से वह भाग साफ़ करें और घाव को मैल-मिट्टी इत्यादि से शुद्ध करके एक शुद्ध वस्त्र को उबलते हुए जल में भिगो कर उस की एक गद्दी बना कर घाव पर रक्खें और फिर एक ऐसी पट्टी से जो न अधिक कसी हो तथा न ढीली हो भली भाँति बाँध दें, तो इस से रुधिर का साधारण रूप में बहना बन्द हो जायगा।

फिर रुधिर के बहने की दशा में इस बात का भली भाँति ध्यान रखना चाहिए कि घाव के भीतर किसी प्रकार का मैल अथवा मिट्टी जाने न पाये, क्योंकि यदि यह चले जायँगे तो भिन्न भिन्न प्रकार के रोग जो कीड़ों से उत्पन्न होते हैं लग जायँगे और अनेक प्रकार का कष्ट बालक को देंगे और सम्भव है कि कभी कभी उस का जीवन नष्ट कर देंगे। इसलिए जो जल ऐसे घावों के लिए प्रयोग किया जाय उस को भली भाँति उबाल लेना चाहिए। उबालने से जल के भीतर जो कीड़े होते हैं वे मर जाते हैं।

यदि कोई धमनी या शिरा अकस्मात् कट जाय तो रुधिर अधिक परिमाण में निकलेगा और यदि इसके बन्द करने का उपाय न किया जाय तो सम्भव है कि रोगी मर जाय। धमनी के कट जाने से जो रुधिर निकलता है उसके रोकने की विधि शिरा के कट जाने की विधि से भिन्न होती है। इसलिए

अध्यापक को उचित है कि वह इस बात को भली भांति जानता हो कि रुधिर शिरा से निकल रहा है या धमनी से।

इसकी पहिचान यह है कि धमनी से जब रुधिर निकलता है तो वह गहिरे लाल रङ्ग का होता है और वेग के साथ उछलता हुआ निकलता है, किन्तु शिरा से जो निकलता है वह धार बँध कर निकलता है और उसका रङ्ग गहरा बैंगनी होता है।

चूंकि धमनियों का रुधिर सदैव दिल से निकल कर शरीर के भिन्न भिन्न भागों में बहता रहता है इसलिए ऐसी दशा में धमनी के उस सिरे को दबाना चाहिए जो दिल से समीपस्थ है, किन्तु शिरा के रुधिर के बन्द करने का ढँग इससे भिन्न होगा। शिरा में जो रुधिर होता है वह दिल की ओर बहता है। ऐसी दशा में शिरा का वह सिरा जो दिल से दूरस्थ है दबाना चाहिए, इससे रुधिर का बहना बन्द हो जायगा।

दबाने का सब से अच्छा ढँग यह है कि जिस स्थान को दबाना हो उसको डोरी या फ़ीते या तस्मे या रूमाल से भली भाँति कस कर बाँधें, यदि इन वस्तुओं में से कोई वस्तु न हो अथवा न मिले तो हाथ से दबा रखना चाहिए।

इस ढँग से शिरा या धमनी के रुधिर को बहते हुए केवल ऐसी दशा में हम रोक सकते हैं जब कि वह धमनी अथवा शिरा किसी हड्डी पर हो या उसके समीप हो, किन्तु जब यह

दोनों मांस के बहुत नीचे हों जैसे कि बाँह या जाँघ में, तो रुधिर का बहना उस समय तक बन्द नहीं हो सकता जब तक कि किसी पट्टी से भली भाँति बांध कर अधिक दबाव न पहुँचाया जाय। इसका उपाय यह है कि पट्टी की दोहरी गाँठ में कोई पेन्सिल अथवा क़लम या लकड़ी तथा रूलर लगा कर उसे घुमाते जायँ जब तक कि रुधिर का बहना बन्द न हो जाय और फिर उसे उसी स्थान पर रख कर घाव वाले अङ्ग के साथ बाँध देना चाहिए (आकृति २७)।
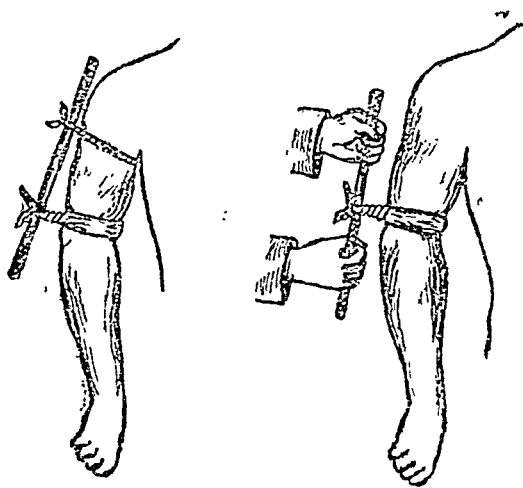
(आकृति २७)

परन्तु रुधिर को पट्टी के द्वारा रोकना प्रत्येक अवसर पर सम्भव नहीं होता, जैसे जब रुधिर गर्दन या धड़ के किसी भाग से बह रहा हो, ऐसी दशा में जब तक डाक्टर न आवे घाव को

अँगूठे अथवा उँगलियों से दबा कर रुधिर का बहना रोक देना चाहिए।

यदि नाक से रुधिर बहता हो तो जहाँ तक सम्भव हो सिर को पीठ की ओर रखना चाहिए और सिर, गर्दन तथा चेहरे पर लगातार ठंढा जल डालते अथवा बर्फ़ रखते रहना चाहिए।

कुछ घाव इस प्रकार के होते हैं कि रुधिर खाल के भीतर ही बहता रहता है और बाहर नहीं दिखाई देता। इस घटना की पहिचान यह है कि घाव वाला अङ्ग तुरन्त नीले या काले रङ्ग का हो जाता है ऐसी दशा में उस अंग को शीघ्र ही ठंढे जल से धो डालना चाहिए और उस अङ्ग को जहाँ तक सम्भव हो विश्राम देना चाहिए इससे सूजन कम हो जायगी।

जब किसी जोड़ के दो हड्डियों को मिलाने वाले बन्धन अकस्मात् खिंच जाते हैं तो हम इस को मोच आना कहते हैं। मोच प्रायः टखने तथा कलाई में आती है। इसमें पीड़ा बहुत होती है और प्रायः वह अङ्ग सूज जाता है। इस दुख के दूर करने का सब से अच्छा उपाय यह है कि जहाँ तक हो सके मोच खाये हुए अङ्ग को विश्राम दिया जाय अर्थात् उससे कोई काम न लिया जाय और एक पट्टी ठंढे पानी में भली भाँति भिगो कर जोड़ पर बाँध दी जाय। पट्टी को दृढ़ता से बाँधना चाहिए और बार बार ठंढा जल उस पर डालते रहना चाहिए। जब पीड़ा तथा सूजन कम होने लगे तो उस अङ्ग पर कई दिन

तक तारपीन का तेल लगाना चाहिए तत्पश्चात् हाथ से भली भाँति मलना चाहिए।

कभी ऐसा होता है कि केवल जोड़ के वन्धन खिंच ही नहीं जाते वरन जोड़ की कोई हड्डी भी अपने स्थान से हट जाती है। ऐसी दशा में साधारण मोच की अपेक्षा पीड़ा तथा सूजन दोनों बहुत होती हैं। जब किसी जोड़ में मोच आ जाती है तो उसे यद्यपि बहुत दुख होता है किन्तु कुछ हिला जुला सकते हैं, परन्तु हड्डी के अपने स्थान से हट जाने की दशा में उस अङ्ग का हिलाना जुलाना असम्भव हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह जोड़ वेढंगा सा हो जाता है।

जब शरीर के किसी भाग में कोई हड्डी टूट जाती है तो वह वेडौल हो जाता है। टूटी हुई हड्डी ऐसी दशा में बहुधा खाल के नीचे उभरी हुई जान पड़ती है। यदि बाँह अथवा टाँग की हड्डी टूट जाती है तो वह अङ्ग अपने सजातीय अङ्ग से छोटा जान पड़ता है।

जब यह निश्चय हो जाय कि शरीर के किसी भाग की कोई हड्डी टूट गई है अथवा अपने स्थान से हट गई है तो डाकृर के अतिरिक्त किसी दूसरे मनुष्य को उसमें हाथ नहीं डालना चाहिए। ऐसी दशा में डाकृर को ही तुरन्त बुलाना चाहिए, यदि कोई डाकृर न मिल सके तो तुरन्त रोगी को किसी पास के अस्पताल में ले जाना चाहिए, किन्तु स्मरण रहे कि रोगी को वहाँ से ले चलने के पहिले चोट खाये हुए अङ्ग को इस प्रकार टिका देना चाहिए कि टूटी हुई या खिसकी हुई हड्डी

मार्ग में किसी प्रकार हिलने झुलने न पावे, नहीं तो रोगी को अत्यन्त कष्ट होगा और घाव भी बढ़ जायगा।

आकृति २८

बांह तथा टांगों की हड्डियां प्रायः टूटा करती हैं। यदि बांह की हड्डी टूट जाय तो उसे पहिले लकड़ी के दो चपटे टुकड़ों अथवा छातों या छड़ियों के बीच में रख कर पट्टियों से भली भाँति कस कर बाँध देना चाहिए। (आकृति २८)

जब बाँह उचित रीति से पट्टियों द्वारा बांध दी जाय तो पगड़ी अथवा किसी कपड़े के बड़े टुकड़े द्वारा गले से लटका देना चाहिए जिस से वह हिलने जुलने न पाये (आकृति २८)।

यदि कलाई की कोई हड्डी टूट जाय तो दो पट्टियों के बदले तीन पट्टियाँ बाँध कर (आकृति २९) बाँह की भाँति किसी कपड़े के द्वारा लटका देना चाहिये।

आकृति २९

यदि टाँग की कोई हड्डी टूट जाय तो तीन पट्टियाँ बाँध कर लकड़ी के टुकड़ों इत्यादि के साथ दोनों टाँगों को परस्पर बाँध देना चाहिये (आकृति ३०)। इस से रोगी की टाँग हिलने जुलने न पायेगी, किन्तु स्मरण रहे कि किसी दशा में पट्टा ठीक उसी स्थान पर नहीं बाँधनी चाहिये जहाँ से हड्डी टूटी हो।
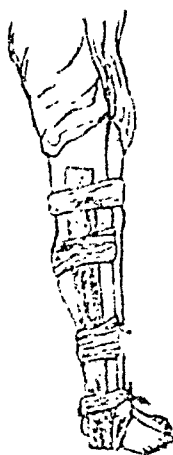
आकृति ३०

जब हँसली टूट जाय तो जिस ओर से टूटी हो उस ओर की बाँह को तुरन्त किसी कपड़े के द्वारा गर्दन से लटका देना चाहिए और किसी कपड़े की गद्दी बगल में रख कर बाँह से शरीर को मिला कर किसी चौड़ी पट्टी से कस कर बाँधदेना चाहिए।

जब टूटी हुई हड्डी इस प्रकार बाँध दी जाय कि वह हिल जुल न सके तो रोगी को खाट या डोली में लिटा कर उस के घर अथवा अस्पताल में ले जाना चाहिए।

परन्तु जब किसी टूटी हुई हड्डी के सिरे मांस तथा खाल से

बाहर निकल आयें तो यह दशा वास्तव में कठिन तथा भयानक हो जाती है । कारण यह है कि ऐसी दशा में रोगों के कीड़े और विषैले तत्त्व सुगमता से घाव के भीतर चले जाते हैं और रुधिर में मिल कर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं । ऐसी दशा में पहिले घाव को कुछ कुछ गर्म जल से साफ़ करें और फिर रुई की गद्दी खौलते हुये जल में भिगो कर घाव पर रक्खें और ऊपर से नर्म पट्टी बाँध दें ।

यदि किसी लड़के के वस्त्रों में आग लग जाय तो उसे तुरन्त भूमि पर लिटा कर कोई कम्मल अथवा कोई और मोटा वस्त्र उस पर डाल देना चाहिए इस से आग बुझ जायगी ।

शरीर के जिन भागों में आग का प्रभाव पहुँचा हो उन से कपड़ों को धीरे से उतार लेना अथवा कतरनी से काट डालना चाहिए । ऐसा करने से उसकी खाल न उतर आयगी । कपड़े उतारते ही अलसी या नारियल का तेल और चूने का जल बराबर परिमाण में मिला कर उस में रुई अथवा साफ़ चिथड़ों का मोटा परत भली भाँति भिगो कर जले हुए स्थान पर रखना चाहिये, जिस से उस स्थान को वायु न लगे ।

गाँव में प्रति वर्ष विशेष कर वर्षा ऋतु में बहुत से लोग डूब कर मर जाते हैं । जब कोई मनुष्य डूबा हुआ जल से ऐसी दशा में निकाला जाय कि वह अचेत हो किन्तु मरा न हो तो सम्भव है कि फिर वह सचेत हो जाय और न मरे इस लिए हम को यह जानना अति आवश्यक है कि ऐसी दशा में क्या करना चाहिए ।

डूबे हुये को जल से बाहर निकालते ही पहिले किसी डाक्टर को बुलाना चाहिए और कुछ सूखे वस्त्र तथा कम्मल उसे गर्म रखने के लिए मँगाना चाहिए, साथ ही गले और कमर पर के वस्त्र ढीले करना चाहिए और नाक तथा मुहँ से मिट्टी इत्यादि निकाल देना चाहिए। तत्पश्चात् उसे चित्त लिटा कर और उस की छाती के नीचे एक छोटा सा तकिया अथवा परत किया हुआ वस्त्र रख कर उसके कंठ तथा कपड़ों से जल निकालना चाहिए। उस की कमर के चारों ओर हाथ डाल कर उस को एक दो मिनट के लिए उठाने से जल सुगमता से निकलेगा।

फिर उसे औंधा लिटा कर देखना चाहिए कि साँस लेता है या नहीं। यदि साँस लेना बन्द नहीं हुआ हो तो उसे गर्म करने और रुधिर सञ्चार को वेग से चलने के लिए उस के सम्पूर्ण शरीर को नीचे से ऊपर की ओर भली भाँति मलना चाहिए, किन्तु यदि साँस लेना बन्द हो गया हो तो कृत्रिम रीति से साँस लिवाने का उद्योग करना चाहिए।

इसके पश्चात् उसे चित्त लिटा कर उस के कंधों की हड्डियों के नीचे तकिया अथवा कोई वस्त्र लपेट कर रखना चाहिए जिस से छाती कुछ ऊँची और सिर नीचा हो जाय। फिर निकटवालों में से कोई उस की जीभ पकड़े रहे जिससे रोगी उसे पीछे की ओर खींच कर साँस की नाली का मुँह बन्द न करले। एक और मनुष्य उस की टाँगों को खींच कर सीधी

रक्खे। अब घुटनों पर खड़े होकर और उस के सिर की ओर झुक कर उस की दोनों बाँहों को कुहनियों के पास से पकड़ कर लगभग २ मिनट तक उस की छाती पर भली भाँति दबाना चाहिए। इस से उसके फेफड़े सिकुड़ जायँगे और अशुद्ध वायु उन से निकल जायगी। इसके पश्चात् तुरन्त दोनों बाँहों को धीरे से उस के सिर की ओर ले जाना चाहिए। जब दोनों कुहनियाँ भूमि से जा लगें और बांह धड़ के साथ समानान्तर हो जायें तो २ मिनट तक इसी प्रकार दबाये रहना चाहिए। ऐसा करने से पसलियाँ ऊपर को उठेंगी और छाती के फैलने से कुछ वायु फेफड़ों में प्रवेश करेगी। अतः जब तक साँस अपने आप भली भाँति चलने न लगे प्रत्येक मिनट में यही सिकोड़ने तथा फैलाने की क्रिया पन्द्रह अथवा बीस बार करते रहना चाहिए। जब साँस चलने लगे तो भी ध्यान से देखते रहना चाहिए कि बीच में बन्द तो नहीं हो जाती, यदि बन्द हो जाय तो तुरन्त उपर्युक्त क्रिया फिर करनी चाहिए, जिस से साँस बराबर आती जाती रहे।

अब भीगे कपड़े उतार कर और सूखे गर्म कपड़ों में लपेट कर फिर सम्पूर्ण शरीर को नीचे से ऊपर की ओर भली भाँति मलना चाहिए जिस से वह गर्म हो जाय और रुधिर-सञ्चार भी वेग से होने लगे। इस का एक और उपाय यह है कि गर्म कम्मल ओढ़ा दें अथवा गर्म जल की भरी हुई बोतलें दोनों बग़लों में हाथ पाँव के दोनों-तलुओं पर रक्खे। इस के-पश्चात् उसे कुछ

गर्म गर्म दूध पिलायें और फिर किसी समीप के घर में ले जाकर कुछ देर के लिए सुलायें।

यदि किसी मनुष्य को कोई पागल कुत्ता काट ले और उसका तुरन्त ही कोई प्रबन्ध न किया जाय तो वह मनुष्य मर जायगा। दो तीन दिन के भीतर उस मनुष्य को कसौली भेज देना चाहिए। रेल का किराया इत्यादि गवर्नमेंट से मिलता है और केवल दो सप्ताह के लिए वहाँ रहना पड़ता है।

यदि कुत्ता पागल न हो तो घाव को साफ़ तथा गर्म जल से धोकर एक साफ़ वस्त्र रख कर एक पट्टी से बाँध देना चाहिए।

साँप, कनखजूरे तथा बिच्छू के काटने तथा डंक मारने की दशा में डाक्टर को तुरन्त बुलाना चाहिए और जब तक डाक्टर आवे दो रूमालों से घाव से कुछ दूर पर तथा नीचे कुछ दूरी पर कस कर बाँध देना चाहिए, जिस से विष रुधिर में मिल कर शरीर में न फैल जाय। इस के पश्चात् कोई मनुष्य जिस के मुँह में कोई रोग अथवा घाव न हो, घाव को चूसे और चूस कर रुधिर को थूक दे और अपना मुँह गर्म जल तथा ब्रांडी इत्यादि से धो डाले। घाव को अत्यन्त गर्म लोहे से जला देना भी प्रायः बहुत उपयोगी होता है, किन्तु किसी दशा में रोगी को समीपस्थ अस्पताल में अथवा किसी समीपी डाक्टर के पास ले जाने में विलम्ब न करना चाहिए।

बर्र, मधुमक्खी तथा चिऊँटी इत्यादि के डंक मारने की

दशा में सब से अच्छा उपाय यह है कि नौसादर और चूने के स्वच्छ जल को भली भाँति मिला कर उस से धोवें यदि यह वस्तुयें न मिल सकें तो प्याज़ का एक टुकड़ा अथवा कुछ गीली सुंघनी या तम्बाकू लेकर उस पर भली भाँति मलें । यदि डंक खाल में रह जाय तो तुरन्त एक छोटी सी ताली की नली उस पर रख कर और दबा कर निकाल लेना चाहिए ।

यदि कोई वस्तु नाक, आँख, अथवा कान में चली जाय तो उसे निकालने के लिए किसी यन्त्र का प्रयोग करना ठीक नहीं है । यंत्र का प्रयोग केवल डाक्टर ही कर सकते हैं ।

यदि आँख में कुछ पड़ जाय तो रूमाल के कोने से सुगमता से निकाल सकते हैं । कभी कभी शुद्ध तथा कुछ गर्म जल से भी आँख स्वच्छ हो जाती है, किन्तु किसी दशा में आँख को मलना न चाहिए ।

यदि कोई वस्तु कान में चली जाय तो वह कभी कभी पिचकारी के द्वारा गर्म जल डाल कर निकाली जा सकती है और यदि कोई कीड़ा-मकोड़ा कान में चला जाय तो तेल की कुछ बूँदें डाल कर उसे मार डालना चाहिए ।

यदि कोई वस्तु नाक में घुस जाय तो दूसरे नथुने को उँगली से बन्द करके छींकने से सुगमता से वह निकाली जा सकती है ।

सातवाँ अध्याय

वायु, जल तथा भोजन

प्रत्येक मनुष्य जानता है कि हमारे लिए वायु कैसी आवश्यक वस्तु है। वायु के बिना हम कुछ मिनट भी जीवित नहीं रह सकते। पहिले भाग के चौथे अध्याय में हम ने वायु के उपयोगी होने की कुछ बातें बताई थीं। वायु फेफड़ों में जाकर रुधिर में मिल जाती है और शरीर के निकम्मे अंशों को क्रमशः जला कर अन्त में अशुद्ध वायु के रूप में निकाल देती है। यदि वायु जो साँस के द्वारा भीतर जाती है ऐसी शुद्ध न हो जैसी कि चाहिए, तो वह शरीर के निकम्मे अंशों को दूर न कर सकेगी और रुधिर धीरे धीरे मैला होता जायगा। अतएव यह आवश्यक है कि जो वायु साँस के द्वारा शरीर के भीतर जाय वह अत्यंत शुद्ध हो, किन्तु खेद का अवसर है कि प्रायः लोग इस बात पर विशेष ध्यान नहीं देते। वायु के अशुद्ध होने के बहुत से कारण हैं और यदि उचित उपाय न किया जाय, तो सम्भव है कि लोग अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जायँ। जो अशुद्ध वायु साँस के द्वारा बाहर निकलती है वह हमारे सन्निकट की शुद्ध

वायु में मिल जाती है और धीरे धीरे उस को अधिक मैला कर देती है। केवल हमारे साँस लेने से ही वायु अशुद्ध नहीं होती, वरन् दीपक तथा अग्नि के जलने से भी मैली होती रहती है। एक साधारण दीपक के जलने से इतनी वायु अशुद्ध हो जाती है जितनी कि चार मनुष्यों के साँस लेने से हो जाती है। अतः जिस कमरे से अशुद्ध वायु के निकलने का कोई प्रबन्ध न किया गया हो उस में अग्नि तथा दीपक जला कर बहुत से लोगों का बैठना हानि-कारक है।

और और मैलों से भी जो फेफड़ों, खाल, मैले मुँह, मैले दाँतों तथा मैले कपड़ों से निकलते हैं वायु अशुद्ध होती रहती है। वायु की यह अशुद्धता उस दुर्गन्धि से पहिचानी जा सकती है, जो उस समय जान पड़ती है जब कि कोई मनुष्य शुद्ध वायु से ऐसे कमरे में प्रवेश करे जिस में बहुत से लोग बैठे हों।

शुद्ध तथा स्वच्छ वायु में साँस लेने के हेतु हम को कोई ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिस से बुरी तथा अशुद्ध वायु तथा अन्य मैल जो हमारे शरीर से तथा अग्नि और दीपक के जलने से उत्पन्न होते हैं कमरों से बराबर निकलते रहें और बाहर से शुद्ध वायु भीतर आती रहे। यह किस प्रकार होगा इस पर हम अपनी सम्मति पहिले ही दे चुके हैं।

मैली अशुद्ध वायु तथा भिन्न भिन्न प्रकार के और मैले अधिकतर कूड़ा करकट के सड़ने से तथा नालियों और मैले जल के गढ़ों, पाखानों, दलदलों तथा गौशाला इत्यादि से ही

अधिकता से उत्पन्न होते हैं। ऐसे स्थानों से वायु अस्वच्छ हो जाती है तथा दुर्गन्ध उत्पन्न होती है, यही नहीं वरन अनेक प्रकार के रोगों के कीड़े भी यहाँ से उत्पन्न होते हैं। यह कीड़े वायु में फैल कर अनेक प्रकार के रोगों के फैलाने का कारण होते हैं। यह कीड़े विशेष कर गंदे तथा मैले स्थानों में रहते हैं। इन्हीं कीड़ों से प्रायः चेचक, खसरा, शीतला, आँव, प्लेग, क्षयी तथा आँख और त्वचा के रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए यह अति आवश्यक है कि जहाँ तक सम्भव हो वायु स्वच्छ हो और उसमें ऐसे कीड़े मिले न रहें। इसका सुगम उपाय यह है कि घर, पाखाने, नालियाँ तथा उनके सन्निकट के स्थान सदैव साफ़ रक्खे जायँ। अतः हमारा धर्म है कि हम निकम्मी वस्तुयें तथा सड़ गले पदार्थ अपने घरों के पास न रहने दें, वरन इनको इतनी दूर फेंकवायें कि हमारे घरों के सन्निकट की वायु मैली तथा अशुद्ध न होने पाये। यदि मैला जल रहने के स्थानों के पास कोई खड्डा रहे तो उससे भी बहुत हानि पहुँचती है। कारण यह है कि उसमें मच्छर उत्पन्न हो जाते हैं जिन के काटने से प्रायः जूड़ी मनुष्यों में फैल जाती है अतः घर के पास कोई ऐसी वस्तु न रहने देना चाहिये जिससे दुर्गन्ध, अशुद्ध वायु, रोगों के कीड़े अथवा अन्य, विषैले पदार्थ उत्पन्न हों।

पाठशाला तथा रहने के स्थानों को आर्द्र न रखना चाहिए और न इनमें अँधेरा रखना चाहिए, क्योंकि ऐसे ही घरों में रोगों के कीड़े अपना घर बना लेते हैं। पाठशाला अथवा घर का प्रत्येक

कमरा ऐसा होना चाहिए जिसमें वायु तथा प्रकाश भली भाँति आता हो। स्मरण रहे कि धूप से प्रत्येक प्रकार के रोग के कीड़े मर जाते हैं।

धूल तथा मिट्टी से युक्त वायु भी बहुत हानिकारक होती है। कारण यह है कि इस वायु के साथ अनेक प्रकार के विष तथा रोगों के कीड़े भी मिट्टी के साथ भीतर चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं धूल मिट्टी इत्यादि भी जब अधिक परिमाण में फेफड़ों में वायु के साथ जाती हैं, तो इससे भी फेफड़ों के भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए हमको चाहिए कि धूल-मिट्टी से मिली वायु में साँस न लें अर्थात् ऐसे स्थान पर न जायँ और न ऐसी वायु को घर के भीतर आने दें। यही नहीं, पीने के जल तथा भोजन के पदार्थों को भी ऐसी वायु से बचाये रखना चाहिए।

यह बात सब को भली भांति ज्ञात है कि बिना जल के हमारा काम नहीं चल सकता। संसार में उपयोगी तथा आवश्यक वस्तुओं में मनुष्य मात्र के लिए वायु के पश्चात् जल की गणना है। हमारे शरीर में जितना बोझ है उसका $\frac{3}{4}$ भाग जल है। जल का कुछ भाग तो वनस्पति और दूसरे भोजन के पदार्थों के द्वारा और अधिकांश पीने के जल के द्वारा शरीर में आता है।

यदि उस जल में जो पीने तथा भोजन बनाने में प्रयोग किया जाता है रोग के कीड़े तथा अन्य विष हों, तो इसमें सन्देह

नहीं कि यह रुधिर में मिल कर भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न कर देंगे । अतः हैज़ा, दस्त, आँव तथा जूड़ी इत्यादि भिन्न भिन्न प्रकार के रोग जल के कीड़ों तथा अन्य मैलों से उत्पन्न होते हैं।

इसलिए हम को उचित है कि पीने तथा भोजन बनाने के लिए शुद्ध जल सदा उपस्थित रक्खें, किन्तु बहुत से मनुष्य ऐसे हैं कि न तो इस बात का विचार करते हैं कि जो जल प्रयोग किया जा रहा है वह स्वच्छ है या नहीं और न उसे मैल से बचाने का उद्योग करते हैं ।

जल प्रायः कुओं, तालाबों तथा नदियों से लिया जाता है । बरसाती जल का एक भाग तो पृथ्वी के भीतर बड़ी गहिराई तक चला जाता है, यहाँ तक कि वह पृथ्वी के भीतर ऐसे स्थान पर पहुँच जाता है कि उस का छनना बन्द हो जाता है और फिर वह नीचे नहीं जा सकता । यही वह जल है जो हमको कुओं से प्राप्त होता है । परन्तु शेष जल जो पृथ्वी के धरातल पर बहता है उससे तालाब और नदियाँ भरती हैं ।

कुयें का जल प्रायः इस प्रकार अस्वच्छ हो जाता है कि उसमें वह मैला जल जिसमें पशुओं के मैल मूत्र और अन्य निकृष्ट वस्तुयें मिली होती हैं, सन्निकट की नालियाँ, पाख़ानों, क़ब्रिस्तानों से धीरे धीरे पृथ्वी के भीतर छनता हुआ अन्त में नीचे जा कर कुयें के जल में मिल जाता है । इस प्रकार अनेक रोगों के कीड़े भी जो मैले स्थानों में रहना चाहते हैं कुयें में चले जाते हैं । अतः यह अति आवश्यक है कि कुयें पक्के हों

तथा उनकी दीवारों की ईंटें चूने के सहित जुड़ी हों, जिससे पृथ्वी के ऊपर का मैला जल उनमें न जा सके। यदि कुयें की दीवार फट गई हो तो उसको बनवा लेना चाहिये। इसलिए यह आवश्यक है कि कुयें कदापि कच्ची नालियों, मैले जल के गढ़ों, पाख़ानों और मवेशीख़ानों इत्यादि के समीप न हों।

यह अति आवश्यक है कि कुयें के चारों ओर कुछ दूर तक ढालू और पक्की भूमि हो, जिस से स्नान करने तथा कपड़े धोने का मैला जल पृथ्वी में छन कर फिर कुयें में न चला जाय। इस ढालू भूमि के चारों ओर एक पक्की नाली भी अवश्य होनी चाहिए जिस से सम्पूर्ण मैला जल बह कर कुयें से दूर चला जाय।

कुयें का जल धूल मिट्टी इत्यादि पत्तियों और अन्य मैलों से भी जो ऊपर से गिरती हैं मैला हो जाता है। इसलिये कुयें पर एक हलका सा सायबान इन सब को रोकने के लिए बनवा लेना चाहिये।

मैले बरतन तथा मैली रस्सियाँ जल निकालने में प्रयोग न करनी चाहिए। वर्ष में कम से कम एक या दो बार कुयें को भली भाँति साफ़ कराना चाहिए। स्मरण रहे कि गहिरे कुयें का जल प्रायः स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है।

तालाब भी नालियों और अन्य मैले स्थानों के जल के बह कर आ मिलने से कुओं की भाँति मैले हो जाते हैं। बहुधा लोग मैले कपड़े और अन्य मैली वस्तुयें उन में धोते हैं। उन के भीतर

पशु घुस कर जल पीते हैं। इससे तालाबों का जल गंदला हो जाता है और उसी को लोग भोजन बनाने और पीने में प्रयोग करते हैं। इस लिए इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि जिस तालाब का जल पीने के काम में लाया जाय उसे प्रत्येक प्रकार के मैल से बचाये रक्खें।

नदियाँ भी तालाबों के सदृश मैली हो जाती हैं, किन्तु उन का मैल जल के साथ बह जाता है, एक स्थान पर सड़ता नहीं रहता जैसा कि तालाबों में सड़ता रहता है। इस के अति-रिक्त नदियों का कुछ मैल वहां के जीव-जन्तु भी खा जाते हैं।

नदियों के किनारों को सदैव साफ़ रखना चाहिए इस के पास मुर्दों को जलाना तथा गाड़ना उचित नहीं है विशेष कर ऐसे स्थान पर जहां से लोग आगे बढ़ कर प्राय: जल लेने के लिए आते हैं। किनारे पर के नगरों तथा गांवों से नदियों में अनेक प्रकार की निकृष्ट वस्तु तथा निवासियों के मल मूत्र मिल जाते हैं अत: ऐसे स्थान के जल से सदा बचना चाहिये।

वर्षा ऋतु में नदियों और तालाबों का जल अधिक मैला तथा गँदला हो जाता है। ऐसे जल में अनेक प्रकार के मैल सम्मि-लित रहते हैं, इसलिए ऐसे जल का प्रयोग वर्जित है। यदि ऐसे जल को पीने तथा भोजन बनाने के लिए लेना हो तो उसे पहिले साफ़ कर लेना चाहिए। इस का सुगम उपाय यह है कि इस जल में थोड़ी सी फिटकरी मिला दी जाय इस से कुछ

घंटों के पश्चात् मिट्टी तथा अन्य मैल जल के पात्र के तल में बैठ जायँगे।

यदि किसी साफ़ पत्थर पर कुछ जल में निर्मली घिस कर मैले जल में मिला दी जाय तो मिट्टी तथा मैल नीचे बैठ जायगा।

पीने तथा भोजन बनाने के सब पात्रों को सदा स्वच्छ रखना चाहिए। इन कार्य्यों के लिए जो जल रक्खा जाय उसे एक दिन से अधिक न रखना चाहिए। प्रति दिन ताज़ा जल प्रयोग किया जाय।

जिस समय हैज़ा, दस्त अथवा आँव या ऐसे और संक्रामक रोग फैल रहे हों तो जल को दस पन्द्रह मिनट तक उबाल लेना चाहिए तब इस का प्रयोग किया जाय। इसका फल यह होगा कि प्रत्येक भाँति के कीड़े जो जल में होते हैं मर जायँगे, किन्तु स्मरण रहे कि उबालने के पश्चात् जल को अधिक समय तक खुला न रहने देना चाहिए नहीं तो रोगों के कीड़े उस में फिर आ जायँगे।

स्वच्छ तथा निर्मल जल जैसा पीने तथा भोजन बनाने के लिये आवश्यक है वैसा ही स्नान करने तथा वस्त्र धोने के लिये भी है। वर्षा ऋतु में जो मैला जल गढ़ों तथा तालावों मे एकत्रित हो जाता है उस में नहाना अथवा वस्त्र धोना अनुचित है। स्नान करने तथा वस्त्र धोने का उद्देश्य यह है कि शरीर से निकला हुआ मैल कुचैल दूर हो जाय, किन्तु यदि हम मैले जल में नहायें धोयें तो शुद्ध होना तो दूर रहा और भी अधिक मैले हो जायँगे।

इसलिए अपने शरीर तथा वस्त्रों को स्वच्छ रखने के लिए हमें नित्य नहाना धोना चाहिए और इस के लिए सदा स्वच्छ जल का प्रयोग करना चाहिए ।

हमारे जीवन का आधार जल के पश्चात् भोजन है । हम पहिले बता चुके हैं कि हम को नित्य भोजन करना इसलिए आवश्यक है कि हमारे शरीर के जो अंश क्षीण होते रहते हैं उन की पूर्त्ति होती रहे । भोजन का वह भाग जिससे शरीर का पालन-पोषण होता है रुधिर ले लेता है और इस प्रकार शरीर के सम्पूर्ण भागों के नष्ट हुए अंशों की पूर्त्ति हो जाती है । यदि भोजन में रोगों के कीड़े अथवा किसी प्रकार के विष सम्मिलित हों तो वह रुधिर में मिल कर उसको धीरे धीरे विषैला कर देंगे, जिससे भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जायँगे और सम्भव है कि मनुष्य की मृत्यु का कारण हो जायँ ।

अतः इस बात का ध्यान आवश्यक है कि हम कैसा भोजन करें और यह भी कि भोजन के ऐसे पदार्थ जैसे कि तरकारी, फल, मांस, मछली इत्यादि जहाँ तक सम्भव हो स्वच्छ हों ।

यदि कोई पदार्थ सड़ जाय और उससे दुर्गन्ध आती हो तो उसे कदापि न खाना चाहिए । ऐसे सड़े पदार्थों से भिन्न भिन्न प्रकार के रोगों के कीड़े अधिक उत्पन्न होते हैं । मांस तथा मछली में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए । कारण यह है कि इन में सड़ने का काम शीघ्र ही आरम्भ हो जाता है और भिन्न भिन्न प्रकार के संक्रामक कीड़ों का उत्पन्न होना भी इन में सम्भव

है। यदि इनके प्रयोग से पहिले इनमें दुर्गंध की कुछ भी शङ्का हो तो इन को कदापि न खाना चाहिए।

तरकारी, चावल, दाल, मांस, मछली, फल तथा अन्य भोज्य पदार्थ भोजन के पूर्व ही स्वच्छ जल से धो लेना चाहिए। सम्भव है कि उन में छोटे छोटे कीड़े तथा उन के अंडे वर्त्तमान हों और उन से भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जायँ।

भोजन सदा भली भाँति पका हुआ होना चाहिए जिससे सुगमता से पच सके। अच्छी तरह पकने से संक्रामक कीड़े मर जाते हैं। दूध बिना उबाले कभी पीना न चाहिए, क्योंकि सम्भव है कि गाय के रोग के कीड़े उस में मिलगये हों। दूध को उबालने के पश्चात् सदा ढका रखना चाहिए।

भोज्य पदार्थों को पकाने के पश्चात् पात्रों को सदैव धो डालना चाहिए और पाकशाला को भी सदा साफ़ और सुथरा रखना चाहिए।

माता पिता, अध्यापकों तथा अन्य सम्बन्धियों को विशेष कर इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि बालक कई दिन का बचा हुआ भोजन, सड़ी हुई मिठाइयाँ तथा ऐसे और पदार्थ मोल लेकर न खाने पायें। मोल लिये हुए पदार्थ चाहे वह तत्काल ही के बने हुए क्यों न हों ऐसे समय में कदापि न खाना चाहिए जब कि हैज़ा, प्लेग अथवा अन्य कोई संक्रामक रोग फैला हुआ हो।

उपर्य्युक्त नियमों के पालन करने पर भी यदि कोई मनुष्य बिना भूख प्यास के भोजन करेगा अथवा क्षुधा से अधिक भोजन करेगा तो वह अवश्य रोग से ग्रसित हो जायगा। इसी प्रकार यदि परिमाण से कम भोजन करेगा तो निर्बल हो जायगा। यदि कोई मनुष्य कुछ कुछ समय के अनन्तर बार बार भोजन करेगा अथवा जब कि पहिला भोजन पचा भी नहीं उस पर और भोजन कर लेगा तथा भोजन नियत समय पर न करेगा, तो उस का स्वास्थ्य अवश्य बिगड़ जायगा। अतः भोजन सदा नियत समय पर और इच्छानुकूल करना चाहिए।

वायु, जल तथा भोजन की स्वच्छता के विषय में हम ने जो कुछ नियम ऊपर बताये हैं उनका पालन यदि कोई अध्यापक पूर्णतया करेगा, तो वह अपना ही स्वास्थ्य नहीं वरन अपने शिष्यों का स्वास्थ्य भी भली भाँति स्थिर रख सकेगा।